तांत्रिक की डायरी

सुशील कुमार

सृष्टि के रहस्यों को जानने के लिए मनुष्य आदिकाल से चिन्तन, मनन और अनुसंधान कर रहा है और शायद अनंतकाल तक करता रहेगा। अन्वेषण के इस महायज्ञ में अब तक विश्व के अनेक मनीषी, दार्शनिक, कलाकार और बुद्धिजीवी अपनी मेधा की आहुति दे चुके हैं। सुप्रसिद्ध अस्तित्ववादी चिन्तक ज्यांपाल सार्त्र ने तो पराजित स्वर में यहाँ तक घोषित कर दिया कि परम तत्व की खोज असंभव है और इस प्रश्न पर और चिन्तन करना केवल मृगमरीचिका से साक्षात्कार करने के समान है। इससे पूर्व महात्मा बुद्ध ने इसे ज्ञानातीत की संज्ञा दी थी। मगर मनुष्य ने हार नहीं मानी और अपने स्तर पर अस्तित्व के गहन प्रश्नों से लगातार जूझ रहा है, इसके बावजूद कि आधुनिक युग ने तंत्रमंत्र, भूत प्रेत के अस्तित्व, ज्योतिषशास्त्र आदि के बारे में वैज्ञानिक स्तर पर अनेक प्रश्न चिह्न खड़े कर दिये, जो मूलरूप से अस्तित्व की समस्याओं से जुड़े प्रश्न ही हैं।

सच तो यह है कि सृष्टि के रहस्य तक पहुँचने की मनुष्य के भीतर एक आदिम जिज्ञासा है। तंत्र मंत्र पर आधारित कथाओं की लोकप्रियता का यही कारण है। इसका आभास मुझे तब हुआ जब मैं साप्ताहिक 'गंगा यमुना' का सम्पादन कर रहा था और उसमें सुशील कुमार की लेखमाला 'एक तांत्रिक की डायरी' का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। यह लेखमाला इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि न केवल पाठकों के सैकड़ों पत्र प्राप्त हुए, बल्कि 'गंगा यमुना' के फोन दिन भर सुशील कुमार का अता-पता जानने के लिए खटकने लगे। 'एक तांत्रिक की डायरी' की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जब 'गंगा यमुना' में इस लेखमाला का प्रकाशन बाधित हुआ तो 'गंगा यमुना' ही बंद हो गया। यह लेखमाला रहस्य जगत् के उद्घाटन के कराण ही नहीं, अपनी प्रवाहमयी भाषा शैली के कारण भी पाठकों के मनोजगत् में प्रवेश करने में सफल रही। यह हर्ष का विषय है कि अब ये रहस्यमयी सत्य कथाएँ पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रही हैं। हिन्दी में विविध विषयों पर जितनी अधिक पुस्तकें प्रकाशित होंगी, हिन्दी उतनी ही अधिक समृद्ध होगी।

– रवीन्द्र कालिया

तांत्रिक की डायरी

सुशील कुमार

आशु प्रकाशन
इलाहाबाद - २११ ००२

तांत्रिक की डायरी

ISBN 81-85377-42-1

☐

प्रकाशक

आशु प्रकाशन

११४३/३१, पुराना कटरा

इलाहाबाद - २११ ००२

☐

प्रथम संस्करण :

२००० ईस्वी

☐

मूल्य :

एक सौ तीस रुपये

☐

आवरण :

दुर्गा कम्प्यूट्रॉनिक्स

☐

अक्षर संरचना

दुर्गा कम्प्यूट्रॉनिक्स

७३५/१, जायसवाल मार्केट,

पुराना कटरा, इलाहाबाद,

फोन : ६००२३८, ४४००२४

☐

मुद्रक

भार्गव प्रेस

११/४, बाई का बाग

इलाहाबाद-२११००३

अपने आराध्य देवाधिदेव
महादेव शिव शंकर
के
चरणों में सादर समर्पित

अनुक्रम

तांत्रिक की डायरी

अपनी बात

मैने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि मेरी पुस्तक प्रकाशित होगी। मेरे जीवन के अनुभव लिपिबद्ध हो कर जन समुदाय तक पहुँचेंगे। मेरे जीवन के निष्कर्षों से मैं ही नहीं समाज भी लाभान्वित होगा।

कई बार यह प्रश्न उठा..... समाचार पत्रों में प्रकाशित होने के कारण पाठकों ने जिज्ञासा की..... मेरे मित्रों परिचितों ने कुतूहलवश पूछा..... मैं तंत्र-जगत में क्यों आया ? कैसे आया ? आज तक तो मैं इस प्रश्न को टालता आया मगर, अब स्वयं को व्यक्त करना पुस्तक की अनिवार्यता है।

आज मैं अनुभव करता हूँ कि मेरी तंत्र की यात्रा पूर्वजन्मों से चली आ रही यात्रा का वर्तमान बिन्दु है। जीवन के प्रारंभ में इस तथ्य से अवगत न था। पूर्वजन्मों की सिद्धियाँ, शक्तियाँ और दिव्य आत्मायें अप्रत्यक्ष रूप से मुझे प्रभावित करती थीं। प्रत्यक्ष रूप से अपने, अन्दर बेचैनी (Restless-ness) महसूस करता था। इस बेचैनी को शान्त करने के लिये, अव्यक्त पिपासा की तृप्ति के लिये मैं संसार में भटका, कई क्षेत्रों में कूदा। पंद्रह वर्ष की आयु में संगीत जगत में उतरा। बाँसुरी-वादन सीखा। प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद के तत्वावधान में होने वाली अखिल भारतीय संगीत प्रतियोगिता में भाग लिया। प्रथम स्थान प्राप्त किया। खेल-जगत में उतरा। बैडमिन्टन, तैराकी, नौका-चालन आदि खेलों में जूझा। विभिन्न खेलों में मैने विश्वविद्यालय (इलाहाबाद) में चैम्पियनशिप, और कैप्टेन्सी हस्तगत की। नाटक के क्षेत्र से भी जुड़ा। इलाहाबाद शहर के नाटक जगत में मैंने संयोजक-व्यवस्थापक के रूप में स्थान बनाया। इसी सन्दर्भ में डॉ० लक्ष्मी नारायन लाल, डॉ० राम कुमार वर्मा, डॉ० रमा शंकर शुक्ल रसाल आदि विभूतियों के संपर्क में आया।

हर क्षेत्र में प्रारंभ में, अच्छा लगा ..... तृप्ति मिली ... शान्ति मिलती सी लगी। थोड़े समय बाद मन उचट जाता। वह विधा अपनी न लगती। स्व का धर्म वही है जिसमें सुकून मिले। शान्ति के ... तृप्ति के भ्रम टूटते

गये। वही बेचैनी मुझे अस्थिर करती रही। स्थायी आनन्द की खोज में निकला मन सांसारिक विधाओं में परिवर्तन करता रहा। इसी उथल-पुथल के अराजक दौर में एक घर से मेरा संपर्क हुआ जिसमें मृतात्माओं का वास था। उस घर में तेरह आत्मायें थी। एक से एक बलशाली। उनकी शक्ति के सामने ..... उनके तेज के सामने कोई न टिक पाता था । वे सब श्रेष्ठ साधक थे जिन्होंने पचासों वर्षों तक गहन-साधना की थी। जीवन के अन्तिम चरण में पथ-भ्रष्ट हुये। साधना खंडित हुयी और **भुँवर लोक** (मृतात्माओं की दुनिया) में फँस गये। उनके क्रिया-कलाप मेरे मन में कुतूहल भरते रहे।

उस समय मैं निर्भय निर्द्वन्द्व उत्साही युवक था। भूत-प्रेत, मृतात्मा आदि पर विश्वास न था। मैं इन्हें कमज़ोर मन वालों की कल्पना समझता था। मै सूक्ष्म जगत की शक्तियों के अस्तित्व को नहीं मानता था। इसे कोरी कल्पना या मन का भ्रम समझता था।

उस घर में विचित्र घटनायें होती थीं। बत्तियॉ अपने आप जल जाती थीं ... बुझ जाती थीं। कहने का अर्थ है कि बल्ब का स्विच अपने आप आन-आफ़ हो जाता था। दरवाजे, खिड़कियाँ स्वयं खुल जाते थे ...... बन्द हो जाते थे। मैं कमरे की ओर बढ़ता तो खुला दरवाज़ा बन्द हो जाता ..... कभी बन्द दरवाज़ा खुल जाता। कभी दुर्गन्ध आने लगती। .... कभी पूरा वातावरण सुगन्धित हो जाता। रात भर विचित्र घटनायें घटती थीं। मैं रात भर इन आत्माओं की उपस्थिति के कारण मानसिक दबाव अनुभव करता। प्रातः सूर्योदय के बाद स्वयं के साथ हुयी घटनाओं पर ही विश्वास न होता। सब कुछ स्वप्नवत लगता। दिन का मन रात की घटनाओं के प्रभाव को स्वीकार न कर पाता। एक दो दिन नहीं ..... एक दो माह नहीं ... कई वर्ष इसी ऊहा पोह में बीत गये। मैं महीनों रात भर जगता रहा – संघर्ष करता रहा मगर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका।

एक बार रात ग्यारह बजे भयंकर अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। एक बार मन सूक्ष्म शक्तियों का अस्तित्व मानने के लिये तर्क करता कि यदि कोई नहीं है तो दरवाज़ा खुलता कैसे है ? दरवाज़े का खुलना ...... मतलब कोई है

जो दिखायी नही देता ...., अदृष्य शक्ति मतलब मृतात्मा ..... तुरन्त ही मन उत्तर भी देता भूत-प्रेत मन का भ्रम है। दरवाज़े के खुलने-बन्द होने के पीछे कोई अन्य कारण है। इसी समय विचार उठा-- 'यदि मृतात्माओं का अस्तित्व है ...... यदि ये मेरे इर्द-गिर्द सक्रिय हैं तो तत्काल बिजली गुल हो जाय ...... ।' विचार समाप्त होने के पूर्व ही शंका हुयी कि हो सकता है इसी समय शहर की बिजली गायब हो जाय। यह मात्र संयोग भी तो हो सकता है। मैंने विचार संशोधित किया, '-- यदि इस कमरे का बल्ब बुझ जाय और बाहर बरामदे का बल्व जलता रहे तो मै मान लूँगा कि मृतात्माओं का अस्तित्व है और वे मेरे इर्द-गिर्द सक्रिय हैं...... ।'

आश्चर्य ! कि मेरा विचार समाप्त हुआ ही था कि कमरे का वल्ब बुझ गया। पूरे शरीर में झुरझुरी दौड़ गयी। मेरी सोच ..... मेरी मान्यता ढह गयी, मैं गड़बड़ा गया। उसी गड़बड़ाहट में उठा। स्विच-बोर्ड के पास गया। 'आन' स्विच को आफ किया ... फ़िर आन किया बल्ब जल गया। कहने का अर्थ यह है कि बल्ब फ्यूज नहीं हुआ था। लाइन में कोई गड़बड़ी भी न थी। परोक्ष रूप से बल्ब के बुझने का कोई कारण न था।

इस घटना के बाद मैने सूक्ष्म शक्तियों के अस्तित्व को स्वीकर कर लिया। मैं उनसे कम्युनिकेट करने की प्रक्रिया सीखने को आतुर हो गया। प्लान्चेट की कई विधायें सीखीं। मृतात्माओं से संपर्क करने लगा। उनकी दुनिया के बारे में जानकारी प्राप्त की। बहुत सी नयी बातें ज्ञात हुयीं। एक बार चस्का लगा तो मैं रहस्यमय सूक्ष्म-जगत में घुसता ही चला गया। कोई अन्य इच्छा न थी ..... कोई लोभ न था ..... स्वार्थ न था .... मात्र जिज्ञासा थी। रोमांचक अनुभूति होती थी। चुनौती भरा पथ था। मुझे मज़ा आता था।

जाने-अनजाने मैंने शक्तियों की अवमानना की। उनका यथोचित आदर-सत्कार न कर सका। मर्यादा का निर्वाह न कर सका मगर उन्होंने मेरा अनिष्ट कभी न किया। मेरी भूलों को ... गलतियों को अनदेखा कर दिया। मेरी बाल सुलभ शरारतों को झेला। मेरे बाल हठ का मान रखा। उनके अनुग्रह के बारे में आज सोचता हूँ तो हृदय भाव-विभोर हो जाता है।

सूक्ष्म-जगत में भाव ही महत्वपूर्ण है। नीयत (intention) ही सब कुछ है। आप की नीयत ही परिणाम निर्धारित करती है। जिस तरह बीज वृक्ष की प्रजाति निर्धारित करता है उसी तरह आपकी नीयत भविष्य का निर्धारण करती है। सूक्ष्म-जगत की शक्तियाँ हृदय के भावों से स्पन्दित होती है। आप मनोभाव छिपा नहीं सकते। यदि भाव ठीक है तो शक्तियाँ अनिष्ट नहीं करती, यदि नीयत ठीक नहीं है तो फिर शूक्ष्म शक्तियाँ अवसर पाते ही हानि पहुँचायेंगी।

मैं तंत्र के सकारात्मक भाव का साधक हूँ। तंत्र का विधायक रूप, कल्याणकारी है। तंत्र, आत्मशुद्धीकरण का मार्ग है। तंत्र मुक्ति की यात्रा है। तम-प्रधान कलियुग में तम प्रधान तंत्र ही आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। इस मार्ग पर चलने वाले साधक आज अलभ्य हैं किन्तु अतीत इन दिव्य विभूतियों से भरा हुआ है। नाथ संप्रदाय के सिद्ध तांत्रिक, वावा कीनाराम जैसे परम हंस गति को उपलब्ध तांत्रिक, इसी प्रकार अन्य विशिष्ट सकारात्मक सिद्ध तांत्रिकों के उदाहरण इतिहास में मिल जायेंगे जिन्होंने जन-कल्याण के लिये तंत्र का प्रयोग किया। तंत्र भौतिक जगत को ...... कामनाओं को ..... भौतिक शरीर की आवश्यकताओं को स्वीकार करता है। तंत्र भोग की महत्ता समझता है। इसलिये भोग से तृप्ति और तृप्ति से निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

डॉ० बाल कृष्ण मालवीय से मेरा परिचय वर्षों पुराना है। वे वरिष्ठ स्थापित रंगकर्मी हैं। जब मैं रंग मंच से जुड़ा था तभी से डॉ० मालवीय को जानता हूँ। कभी-कभी हम लोग शाम साथ व्यतीत करते हैं। उन्हीं के घर पर रवीन्द्र कालिया से परिचय हुआ। कालिया जी मेरे तंत्र के अनुभवों पर फिदा हो गये। उनके मन में मेरे तंत्र के अनुभवों को अपने साप्ताहिक 'गंगा-यमुना' में प्रकाशित करने की ललक उठी। उन्होंने डॉ० मालवीय से मेरे अनुभवों को लिपिबद्ध करने का अनुरोध किया। कालिया जी ने डॉ० मालवीय से कई बार कहा। उनके मन में 'तांत्रिक की डायरी' नाम का कालम छापने की इच्छा इतनी बलवती हुयी कि एक बार तो उन्होंने डॉ०

मालवीय की शराब का पूरा व्यय बतौर पारिश्रमिक देने का प्रस्ताव रख दिया। कालिया जी की चाहत देख कर मेरा मन डोल गया, मगर बाद में लेखकीय दायित्व उठाने से मन हिचक गया। ..... मुझे लगा लिखने से ख्याति बढ़ेगी, मेरी व्यस्तता और बढ़ेगी। ऐसे भी जब-तब लोग आ जाते हैं। गहन साधना का समय नहीं मिलता। साधना के लिये एकान्त चाहिये। अपरिचय चाहिये। सिद्ध महापुरुषों की बात और है। वे संसार में बरतते हुये भी ईश्वरत्व से लयबद्ध होते हैं। मैं तो अभी साधक हूँ ..... भटक सकता हूँ। मेरे ऊपर, अंकुश लगाने वाला कोई गुरू भी तो नहीं है जो समय-कुसमय मुझे दिशा-निर्देश दे। ज़रा भी दृष्टि चूकी तो समझने .....संभलने में ये जन्म भी व्यतीत हो जायेगा । निष्पक्ष आत्म निरीक्षण ही मेरा अंकुश है। इसलिये मै सावधानी बरतता हूँ। मेरा स्वयं से प्रश्न था कि क्या चाहिये? धन ! नहीं यश ..... नहीं ..... काम ....! नहीं .... तो फिर मंजिल मिलने से पहले मनुष्य-समाज से दूर रहो। जितना जाने जाओगे उतना समय गँवाओगे। मैं शान्त बैठ गया।

कालिया जी शान्त न बैठ सके। उन्होंने डॉ० प्रदीप भटनागर से कहा। प्रदीप (वर्तमान में संपादक 'समता लहर') मेरे अनुजवत् है। स्नेह के पात्र हैं। उन्होंने मुझसे, अनुभव लिखने को कहा। मैं टाल गया। उन्होंने दो-तीन बार, अनुरोध किया। प्रकाशन के महत्व को समझाया, मगर मैं चुप रहा। यश मालवीय, आये। यश के पिता उमाकान्त मालवीय मेरे, अग्रज-मित्र थे। मैं हृदय से उनका सम्मान करता था। इस नाते यश मेरे स्नेह आत्मीयता और संरक्षण के अधिकारी हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय यश को ही है। यश के बारम्बार आग्रह पर मैं अपने इष्ट शिव की ओर उन्मुख हुआ-- महादेव! क्या यह तुम्हारी इच्छा है ? बार-बार मुझ पर मेरी इच्छा के विरुद्ध दबाव पड़ रहा है। कहीं यह तुम्हारी लीला तो नहीं नटराजन् ! वरना कालिया जी जैसे वरिष्ठ स्थापित साहित्यकार को मेरे लिखने से क्या लेना-देना ? 'तांत्रिक की डायरी' कालम में छपने से उनकी व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि तो हो न पायेगी! कहीं उनकी इच्छा के पीछे अप्रत्यक्ष रूप से महाकाल की प्रेरणा तो नहीं !

मैं इसी उहापोह में था कि एक दिन कालिया जी का यश के साथ मेरे पूजन-स्थल पर आगमन हुआ। उनके आते ही सब कुछ, आईने की तरह स्पष्ट हो गया। मेरे आराध्य देवाधिदेव महादेव शिवशंकर ही ताने बाने बुन रहे थे। मैंने लिखना प्रारंभ कर दिया।

प्रस्तुत पुस्तक लेख-माला नहीं ..... शिव की कृपा से मेरे जीवन में होने वाली घटनाओं का संकलन है। इसमें नमक-मिर्च लगा कर सजाया संवारा भी नहीं है। जो कुछ समझा है अपनी दृष्टि से, घटनाओं को लिपिबद्ध किया है। आस्था, विश्वास और स्वीकार भाव से पढ़ने वालों का कल्याण होगा। मेरे निष्कर्ष समाज तक पहुँचे। .... मैं लेखक बना इसका श्रेय प्रत्यक्ष में श्री रवीन्द्र कालिया, यश मालवीय और प्रदीप भटनागर को जाता है। अप्रत्यक्ष में तो शिव की कृपा ही हम सबको एक धागे से बाँधती चली गयी।

यदि मैं अपने घनिष्ठ मित्र अशोक संड की चर्चा न करूँ तो बात, अधूरी ही रह जायेगी। मेरे सांसारिक जीवन की लगभग हर घटना उन्हें ज्ञात है। वे मेरे सहयोगी, सलाहकार और प्रेरक हैं। व्यवहारिक जगत के विभिन्न संदर्भों में उन पर निर्भर हूँ। कार्यालय का दायित्व हो ..... लोकाचार की बात हो ..... या सांसारिक संबंधों के निर्वाह हेतु, आचरण-निर्धारण का मसला हो, अशोक संड, अपनी सचेत दृष्टि और सक्रिय सहयोग से सब कुछ संभाल लेते हैं। मैं निश्चिन्त हो कर अपनी दिनचर्या में अपने अनुसार डूबा रहता हूँ।

■ ■ ■

डॉ० रसाल और मैं

पुनर्जन्म हो गया डॉ० रसाल का नहीं तो आज दिखाता कि तुम्हारा 'तमसी' कितने ज्योतिषियों और विद्वानों के लिये सम्माननीय है। ब्रह्माण्ड में कहीं भी तुम्हारी आत्मा होती...। देवलोक, यक्षलोक, किन्नर लोक.... मैं अपनी शक्ति से खींच लेता और तुम्हे दिखाता कि तंत्र की शक्ति के समक्ष बड़े-बड़े आचार्य, प्राचार्य और सात्विक ब्राह्मण भी नतमस्तक हैं।.

तुम्हारी गालियों ने पग-पग पर मेरा मार्ग प्रशस्त किया। तुम्हारी दुत्कार और फटकार मेरे दृढ संकल्प का कारण बनी। जब-तब नफरत से घूरती तुम्हारी बिल्लौरी आँखों की स्मृति मेरे थके-हारे क्षणों में नयी प्रेरणा का आह्वान बनी। मेरे लिये कभी तुम्हारी दृष्टि में प्यार नहीं छलका। कभी स्नेहिल आत्मीय भाव से तुमने मेरे सिर पर हाँथ नहीं रखा। गली के कुत्ते की तरह तुम मुझे दुरियाते थे, और अड़ियल टट्टू की तरह अड़ा मैं वहीं बैठा रहता। मैंने भी तो कभी तुम्हारी कोई बात नहीं मानी। जब कभी तुमने कहा उसका उल्टा ही मैंने किया। तुम्हारा और तुम्हारे ज्योतिष ज्ञान का तुम्हारे सामने बैठकर मजाक उड़ाता रहता। छेड़-छेड़ कर तुम्हारा उपहास उडाता था। तुम्हारी गालियों का..... तुम्हारी कटूक्तियों का आनन्द लिया करता था। तुम्हारी गालियाँ मेरी दिनचर्या का अंग बन गयी थीं..... जिस दिन नही मिलती.... दिन भर मन खाली-खाली रहता... लगता कि कुछ खो गया है।

तुम्ही नहीं मै भी विचित्र हूँ। संघर्षों में जिया हूँ। विरोधों में पनपा हूँ। झुकना मैंने सीखा नहीं। उटा हुआ मेरा सिर किसी को सहन नहीं हुआ। बचपन से ही अपने, अनुसार जीने की इच्छा किसे स्वीकार होती? कौन माँ-बाप, परिजन-गुरुजन, सहन कर सकेंगे बालक की स्वतंत्र अमर्यादित आकांक्षायें....। असहमतियों के आधार पर बन गयी धारणायें... धारणाओं

के अनुसार दो दल फिर दलों में संघर्ष। एक ओर घर परिवार, नातेदार, रिश्तेदार सभी.... दूसरी ओर मैं अकेला....। मेरा विधायक सकारात्मक संघर्ष मुझे उन्नत करता गया। मैं शिखर पर चढ़ता गया। उनका नकारात्मक अहंकारी संकीर्ण दृष्टिकोण उन्हें नीचे गिराता चला गया। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि युद्ध में विजय किसकी हुयी महत्वपूर्ण यह अधिक है कि युद्ध के मुद्दे क्या हैं और युद्ध कैसे लड़ा गया? जीवन का संघर्ष अन्तिम श्वास तक चलता है। संघर्ष का तरीका..... संघर्ष का अन्दाज हमारे जीवन को निखारता है या बिगाड़ता है।

रुक्ष संबंधों में विकट रुक्ष और कटु संबंधी थे डॉ० रसाल, जिनकी कटुता और रुक्षता मेरी प्रेरणा बनी। जिनकी गालियों की स्मृति ने मेरी दृष्टि कभी लक्ष्य से हटने नहीं दी और जिनकी व्यंगात्मक कटूक्तियों की बौछारों की याद मेरे जीवन में निरन्तर नयी प्रेरणाओं का स्रोत बनती रही। तुम्हारी याद आती है तो गालियाँ भी याद आती हैं। आज उस तरह से बिन्दास गाली देने वाले लोग नहीं हैं। अब तो लोग गालियाँ देते नहीं गालियाँ करते है। मुँह पर विनीत मित्रवत बने रहते हैं.... पीछे-पीछे वार करते हैं।

हिन्दी साहित्य से परिचित कौन होगा जो डॉ. रसाल को न जानता हो। डॉ. रसाल हिन्दी के कवि, रचनाकार और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रवक्ता थे। बाद में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हुये। इन सब विशेषताओं के अतिरिक्त डॉ. रसाल ज्योतिष शास्त्र के प्रकांड पंडित भी थे। उनके द्वारा की गयी भविष्यवाणियाँ बहुत कम गलत निकलती थीं। सात्विक सदाचारी डॉ. रसाल के ऊपर ईश्वर की विशेष कृपा थी। उस समय मुझमें समझ न थी। बहुत दिनों बाद समझ पाया कि उनकी चमकती हुयी बिल्लौरी आँखों में सात्विक सिद्धि का प्रकाश था। उनके ऊपर इष्ट की विशेष कृपा थी।

ममफोर्डगंज में आज जहाँ इलाहाबाद विकास प्राधिकरण ने 'एम.आई.जी.' और 'एच.आई.जी. फ्लैट की कतारें बनायी हैं पहले वहां नाला था। हर वर्षा ऋतु में वह नाला वर्षा के जल से भर जाता था। उसी नाले के परली ओर डामर रोड है उसके एक किनारे पर डॉ. रसाल का मकान

था। ६०-६५ वर्ष की आयु में भी उनकी चुस्ती देखते बनती थी। अपना सारा काम वे स्वयं करते थे। बहुत सफाई पसन्द थे। सत्‌तत्व की अधिकता के कारण आज के युग से उनका तालमेल नहीं बैठ पाता था। जन सामान्य का चारित्रिक पतन उन्हें चुभता था। लोगों का स्वार्थ कपट और ओछापन उन्हें कचोटता था। वे अपने जीवन-मूल्यों और आदर्शों के साथ समझौता नहीं करते थे और निम्न-स्तरीय व्यक्तित्व को सहन नहीं कर पाते थे। जब-तब लोग अपनी जन्म-कुंडली लेकर भविष्य पूछने आ जाते थे। अधिकांश लोगों को वे डांट कर भगा देते। उनका कहना था कि बतायी हुयी बात यदि सत्य निकल जायगी तो आदमी पलटकर वापस नहीं आयेगा। कृतज्ञता व्यक्त नहीं करेगा। यदि गलत निकल गयी तो जीवन भर उलाहना देगा। जब जहाँ मिलेगा 'डॉ. साहब आपने कहा था..... मगर हुआ नहीं'.... पूछो स्सालों का ठेका ले रखा है मैंने?

उन दिनों मैं नये कटरे में बेली रोड पर रहता था। गर्मियों में गंगा स्नानार्थियों की भीड़ बढ़ जाती है। परीक्षायें समाप्त होने के बाद लड़कों की भीड़ गंगा नहाने को विशेष उत्सुक हो जाती है। इलाहाबाद की गर्मी से बेहाल लड़के गंगा में किल्लोल करते हैं। रसूलाबाद में गंगा घाट पर धार्मिक भाव से गंगा-स्नान करने वाले लोग लड़कों की भीड़ से परेशान हो जाते हैं। कुछ नौसिखिये तैराक पूरे घाट में हलचल मचाये रहते हैं। ये नौसिखिये तैराक गंगा की बीच धारा में नहीं जाते। डूबने से डरते हैं। किनारे-किनारे ही तैरते हैं और नहाने वालों पर छपाक-छपाक पानी उछालते रहते हैं। आये दिन ये नौसिखिये तैराक डूबते रहते हैं। १९६४ मई में नये कटरे से गंगा नहाने जाने वाले लड़कों में मैं भी था। हाईस्कूल की परीक्षा समाप्त हुयी थी। गर्मी की छुट्टियों का आनन्द लेने के लिये मैंने भी गंगा-स्नान प्रारंभ किया था। प्रातः ५ बजे हम लोग घर से निकलते और लौटते-लौटते आठ बज जाते थे।

एक दिन गंगा नहाकर लौट रहा था। ममफोर्डगंज में फौव्वारे वाले चौराहे के पास किसी व्यक्ति ने मेरे मित्र से डॉ. रसाल का पता पूछा। हम लोग सायकिल से उतर गये (मैं और मेरा मित्र एक ही सायकिल पर थे),

अपरिचित परदेशी कातर भाव से बोला, 'भैय्या! लड़का बीमार है। पंडितों ने मारकेष बताया है। मेरे रिश्तेदार ने डॉ. रसाल के पास भेजा है। वो बहुत बड़े ज्योतिषी है। उनसे पता चल जायेगा कि हमें क्या करना चाहिये।' हँसना चाहते हुये भी उस व्यक्ति का दयनीय मुख देखकर मैं हँस नहीं सका। ज्योतिष शास्त्र पर मेरा विश्वास न था। ज्योतिषों को मैं पाखंडी समझता था। अपने कर्म और संकल्पशक्ति पर अगाध विश्वास था। डॉ. रसाल के बारे में सुना तो था मगर उन्हें देखा न था। चलो इसी बहाने डॉ. रसाल से भी साक्षात्कार हो जायेगा। सोचकर मैं अपने मित्र के साथ उस अपिरिचित को डॉ. रसाल के घर पहुँचाने चल दिया। डॉ. रसाल जांघिया बनियाइन पहने अपने घर के बरामदे में झाड़ू लगा रहे थे। अपिरिचित व्यक्ति के पास डॉ. रसाल के किसी मित्र का पत्र था। उसने वह पत्र डॉ. रसाल को दिया। पत्र पढकर वो हमें अन्दर कमरे में ले गये। तख्त पर स्वयं बैठकर हमें कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। संबंधित लड़के की जन्म कुंडली लेकर देखा। कुछ जोड़ा घटाया। बताया कि लड़के का बचना मुश्किल है। मारकेष विकट है। वह व्यक्ति रोने लगा। बोला, इकलौता लड़का है डॉ. साहब! उसे कुछ हो गया तो हम कहीं के न रहेंगे। लड़के की माँ तो रो-रोकर जान दे देगी।' डॉ. रसाल खामोश रहे। उस व्यक्ति ने रोते हुये उपाय पूछा। डॉ. साहब ने मना कर दिया। उसने डॉ. रसाल के पैर पकड़ लिये। अनुनय विनय करने लगा, मगर डॉ. रसाल न पसीजे। बात मेरी सहनशक्ति के परे चली गयी थी। मुझे सब कुछ नाटक सा लग रहा था। चौदह वर्ष का किशोर मन डॉ. रसाल की कठोरता देखकर वितृष्णा से भर उठा। मैं उस व्यक्ति से बोला, 'छोड़ो उनके पैर...। समय व्यर्थ मत गॅवाओ......। लड़के को किसी अच्छे डाक्टर को दिखाओ।'

अभी तक डॉ. रसाल मुझे उस व्यक्ति के साथ का ही समझ रहे थे। मेरे झिड़कने पर चौके तो मैंने अपने बारे में बताया और उनसे कहा, 'इसे किसी अच्छे डाक्टर के पास जाने को क्यो नहीं कह देते।'

'कोई फायदा नही' डॉ. रसाल निर्विकार भाव से बोले।

मैं चिढ़ गया, 'मौत कब होगी.....? क्या तुम जानते हो।'

'अगर मैं नहीं जानता तो तुम मेरे पास क्या पूछने आये हो?' डॉ. रसाल ने प्रश्न का उत्तर प्रश्न से दिया।

'मैं तो इसे तुम्हारा घर दिखाने आया था' मेरा क्रोध बढ़ रहा था, 'मुझे नहीं पता था कि ज्योतिष का ढोंग करने वाले इतने निर्मम भी होते हैं।' डॉ. रसाल ने कुछ क्षण ध्यानपूर्वक मेरी आँखों में झांका फिर उस व्यक्ति को कल उपाय बताने के लिये बुलाया।

दूसरे दिन प्रातः मैं पहुँचा। डॉ. रसाल ने प्रश्नवाचक दृष्टि से मुझे देखा। मैंने उन्हें कल की घटना याद दिलायी और उस आदमी के बारे में पूछा। डॉ. रसाल हँस पड़े। उन्होंने सीधे सपाट स्वर में कहा, 'वो नहीं आयेगा। लड़का रात में ही मर गया।'

आश्चर्य में भर कर मैंने पूँछा, 'कैसे पता चला?'

उन्होंने पूर्ण आत्मविश्वास से कहा, 'कल जन्मकुंडली देखकर ही पता चल गया था।'

अबकी मैं हँसा, 'इस ज्योतिष का लटका किसी और को समझाना.... मैं मूर्ख नहीं हूँ कि तुम्हारे झांसे में आ जाऊँ..... यहीं नये कटरे का वासी हूँ..... पक्का इलाहाबादी.....।'

डॉ. रसाल का मूड खराब हो गया। छोटा सा लड़का और इतनी जुर्रत! झुंझलाकर बोले, 'निकल जा यहाँ से...।' हँसते हुये व्यंग्य से मैं बोला, 'अब तो भगाओगे ही...... अभी वो आदमी आ जायेगा तो ज्योतिष की पोल खुल जायेगी न! वो चुप हो गये। अन्दर कमरे में चले गये। मैं बरामदे की सीढ़ियों पर बैठ गया। घंटों बैठा रहा। वह आदमी नहीं आया। निराश होकर वापस घर लौटा। सोचता रहा– 'क्या डॉ. रसाल सच कह रहे थे....? कितने आत्मविश्वास से उन्होंने मृत्यु की भविष्यवाणी की..... क्या सचमुच वह लड़का मर गया? चौबीस घन्टे पहले मृत्यु को जान लेना..... कितना रोमांचक है। इस तरह बहुत सी बातें जानी जा सकती हैं। सब कुछ पहले से पता हो तो कितना मज़ा आये.....। किशोर मन कल्पना में उड़ने लगा।

फिर कल्पना पर अंकुश लगा–पता तो करो..... कहीं ये आदमी फ्राडिया तो नहीं.....।'

मैंने कई लोगों से चर्चा की। उनकी विद्वता पर किसी को शंका न थी। सभी ने उनके बारे में, अच्छा मत व्यक्त किया। पं. मुन्ना महाराज (स्वर्गीय) की प्रतिक्रिया आज तक न भूल सका। उन्होंने हॅसकर कहा था, 'सनकी अब सनकी के पल्ले पड़ा है।' मैंने उनका मंतव्य पूछा तो उन्होंने कहा था, 'उनके ज्योतिष ज्ञान में सन्देह नहीं मगर वो मूडी हैं..... सनक जाते हैं तो मर्यादा का ध्यान नहीं रखते और तुम भी जिद्दी हो। पड़ जाते हो तो फिर मन की करके ही दम लेते हो।' मैं उनकी बात पर विचार करता हुआ लौट आया।

एक बार मैं अपनी जन्म कुंडली लेकर डॉ. रसाल के घर पहुॅचा। मुझे देखकर वो गंभीर हो गये। बेरुखी से बोले, 'क्या है?' मैंने अपनी जन्म कुंडली उनके सामने रख दी। विनयपूर्वक बोला, 'कुछ बताइये। वे चिढ़कर बोले, 'क्या जानना चाहता है तू?'

'अपना भविष्य' अतिशय विनम्रता से मैं बोला, 'मेरा भाग्य बताइये... कैसी नौकरी होगी.... क्या करूँगा.....? 'तेरा भविष्य' एक उड़ती हुयी दृष्टि उन्होंने मेरे जन्मांग पर डाली। फिर बोले, 'सामान्य है सामान्य शिक्षा.... सामान्य नौकरी..... सामान्य घर-परिवार...... मध्यमवर्गीय जीवन रहेगा।'

किशोर महत्वाकांक्षी मन कुछ विशेष सुनना चाहता था। सब कुछ सामान्य सुनकर अहंकार आहत हुआ। आहत स्वर में जिज्ञासा की, 'कैसे बताया आपने..... जरा मुझे भी समझाइये....।'

ठठाकर हँस पड़े डॉ. रसाल, 'कल का लौंडा पूछ रहा है कैसे बताया.....? अब बता दिया इसका कोई अहसान नहीं.... पूछता है कैसे बताया?'

उनके व्यंग्य से मैं पुनः आहत हुआ फिर भी विनम्रता से बोला, 'मैं ज्योतिष सीखना चाहता हूँ..... आप सिखाइये।'

डॉ. रसाल व्यंग्य से बोले, 'ये सात्विक ज्ञान है। नियम धर्म के पालन से वर्षों में मिलता है।'

'मैं सब कुछ करूँगा।' मैं दृढ़ता से बोला, 'ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त करने के लिये मैं हर कीमत देने को तैयार हूँ।'

उन्होंने एक गहरी दृष्टि मेरी जन्मकुंडली पर डाली फिर मुस्कराकर बोले, 'तेरे अन्दर तमस तत्व का बाहुल्य है ये सात्विक ज्ञान है। तू सुपात्र नहीं है।'

मैं अचकचा गया। सत, रज, तम क्या होता है मैं नहीं जानता था। मैंने इसका अर्थ पूछा तो डॉ. रसाल हँसकर बोले, 'मरुस्थल में गुलाब का पौधा नहीं होता। जब तक उपयुक्त जमीन न हो बीज डालना व्यर्थ है।'

मैं तिलमिला गया। ऐसा ज्ञानी पंडित है ये.... मेरी तुलना रेगिस्तान से कर रहा है? ज्योतिष का ज्ञान क्या मिल गया इसके घमंड का तो छोर ही नहीं मिलता। निराश और दुखी मन से मैं वापस चला आया।

कुछ दिन बाद गंगा नहाकर लौटते हुये डॉ. रसाल के घर गया। मुझे देखकर वे मुस्कराये बोले, 'फिर आ गया रे तमसी।' व्यंग्यभरी उनकी मुस्कराहट से चिढ़कर मैं बोला, 'आश्चर्य क्यों हो रहा है? आप तो ज्योतिष शास्त्र के पंडित हो। ग्रह नक्षत्रों ने बताया नहीं कि आज मैं आ रहा हूँ।'

'क्या पिद्दी क्या पिद्दी का शोरवा? डॉ. रसाल हँसकर बोले, 'अबे ग्रह क्या तेरे बारे में बतायेंगे...? तेरी हस्ती क्या है?' किशोर कोमल हृदय व्यंग्य के कटु प्रहार न झेल सका। क्रोध आ गया, 'अपनी हस्ती दिखाऊँ क्या?'

डॉ. रसाल पुनः व्यंग्य से हँसे, 'क्या है बे....? कल का लौंडा..... क्यों अकड़ रहा है? क्या है तेरी हस्ती....?' मैंने पास पड़ी उनकी छड़ी उठायी और घुमाकर क्रोध से बोला 'अभी मैं तुम्हारा सिर फोड़ देता हूँ..... फिर विचारना ग्रह नक्षत्रों के सात्विक ज्ञान से कि कौन से ग्रहों का योग तुम्हारा सिर फोड़ता है।'

मेरा रौद्र रूप देखकर डॉ. रसाल डर गये कि कहीं वाकई लड़का डंडा न मार दे। अगर वो जरा सी चूँ चपड़ और करते तो मैं उनका सिर निश्चित फोड़ देता। उनके मौन ने मुझे भी शान्त कर दिया। मैं उनकी छोड़ी वहीं रखकर वापस चला गया।

अब मैं डॉ. रसाल के घर जाने लगा। खाली समय वहीं व्यतीत करता। मन में ज्योतिष सीखने की ललक थी मगर प्रगट में ज्योतिष शास्त्र को नकारता था। उनके पास आने वाले लोगों की बातें ध्यान से सुनता..... डॉ. रसाल के जन्मकुंडली बाँचने की कला को समझने की चेष्टा करता, जब तब उनसे प्रश्न करता। मेरे प्रश्नों के उत्तर उन्होंने कभी संतोषजनक नहीं दिये। मेरी शंका का कभी समाधान नहीं किया। डॉ. रसाल सदैव चुटकी लेते। वे अपनी व्यंग्योक्तियों से मुझे आहत करते। उनके चुटीले प्रहारों से मैं बिलबिला जाता। उनके व्यंग्य ताने मेरे कोमल हृदय को छेदते। जाने क्या मज़ा मिलता था मुझे आहत करने में..... मेरा उनका क्या मुकाबला मैं इन्टर में पढ़ने वाला छात्र और वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अवकाश प्राप्त विभागाध्यक्ष। वे ज्ञान के पंडित और मैं नादान, नासमझ किशोर! जाने कौन सी ग्रन्थि थी कि मेरे मन को चोट पहुँचाने का कोई अवसर वे न छोड़ते थे। मैं भी चिढ़ जाता..... जली कटी, बोलता..... उनकी अवज्ञा करता फिर भी उनके घर जाता। ज्योतिष सीखने की ललक मन में थी। इसी चाह में जाता था मगर उन्होंने कभी कुछ न सिखाया। फिर भी मैने जाना न छोड़ा। वर्षों इसी आशा में जाता रहा, मगर डॉ. रसाल टस से मस न हुये। वे नफ़रत से मुझे दुत्कारते रहते। जब तब व्यंग्य से उनका तमसी कहना मुझे बहुत चुभता। मैं ज्योतिष शास्त्र सीखने लायक नहीं हूँ यह बात मुझे चुनौती सी लगती। डॉ. रसाल का हर इन्कार मेरी इच्छा को बलवती करता गया। उनका यह व्यंग्य भविष्य जानने की मेरी इच्छा को दृढ़ करता गया।

एक बार एक जर्मन व्यक्ति डॉ. रसाल से मिलने आया। सुबह का समय था। बाहर के छोटे बरामदे में मैं खड़ा था और सफेद जांघिया बनयाइन पहने डॉ. रसाल झाडू लगा रहे थे। उस विदेशी ने मुझसे कहा, 'आई वान्ट टू मीट डॉ. रसाल' (मैं डॉ. रसाल से मिलना चाहता हूँ) मैंने डॉ. रसाल की ओर इशारा किया तो डॉ. रसाल उससे बोले, 'वेट ए मिनट...! डॉ. रसाल इज कमिग' (एक मिनट प्रतीक्षा करो डॉ. रसाल आ रहे हैं) इसके बाद डॉ. रसाल अन्दर गये। धोती कुर्ता टोपी सब पहन कर हाथ में छडी लेकर बाहर आये। विदेशी क्षणभर तो अचकचाया फिर पहचान कर बोला तो डॉ. रसाल

ने उत्तर दिया, 'आइ वाज क्लीनिंग हाउस एण्ड बाज स्वीपर ऐट दैट टाइम। नाउ आई एम डॉ. रसाल द फिलास्फर' (मैं घर को साफ कर रहा था तो जमादार था अब मैं ज्ञानी डॉ. रसाल हूँ)। डॉ. रसाल का आचरण विचित्र और विरोधी था। कभी तो बड़े प्रेम से जन्मकुंडली बाँचते थे। कभी आने वाले को डाँटकर भगा देते थे। कब क्या करेंगे? किससे कैसा व्यवहार कर बैठेंगे? समझ पाना मुश्किल था। कभी उसी व्यक्तिसे मृदु व्यवहार करते थे और कभी उसी व्यक्ति से कठोर हो जाते थे। उनके विचित्र व्यवहार के कारण मैं भी दुविधा में रहता। पूर्ण आस्था से ज्योतिष शास्त्र को स्वीकार भी न पाता और अस्वीकार भी न कर पाता। कभी लगता कि ज्योतिष शास्त्र स्वयं में पूर्ण विज्ञान है। कभी लगता कि सब कुछ पाखंड है। आस्था, अनास्था विश्वास अविश्वास के बीच ऊबता उतराता मेरा मन किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहा था।

एक दिन मैं डॉ. रसाल से बोला, 'अब कुछ दिन आप चैन से रहेंगे।' 'क्यों?' उन्होंने तुरन्त प्रश्न किया, 'क्या हो गया?'

'आपका तमसी कानपुर जा रहा है।' मैंने मुस्कराते हुये कहा, 'एक-डेढ़ माह मैं कानपुर में रहूँगा। आपको मुझसे मुक्ति मिल जायेगी।'

'कब जाओगे?' डॉ. साहब ने अचानक गंभीर होते हुये प्रश्न किया।

'कल सुबह आसाम मेल से 'मैंने बताया वे मौन, दो मिनट तक कुछ सोचते रहे फिर दृढ़ता से बोले, 'कल तू कानपुर नहीं जा सकता।'

'क्यो?' मैंने विस्मय से पूँछा

'यात्रा का योग नहीं है।' डॉ. रसाल ने गंभीरता से कहा।

मैं ठठाकर हँस दिया, 'ये ग्रह-नक्षत्रों का ज्ञान अपने पास रखो डॉ. साहब! पब्लिक को मूर्ख बनाओ...... मैंने सोच लिया कि मुझे जाना है तो कोई रोक नहीं सकता।' मेरी वाणी में दंभ था।

डॉ. साहब ने पुनः स्पष्ट कहा, 'कल तू नहीं जा सकता।'

डॉ. रसाल को उनके ज्योतिष-ज्ञान के दंभ को चोट देने का अवसर मिला था। एक लम्बे समय से उनके व्यंग्य-बाणों का उत्तर देने का समय

आ गया था। उन्हें मिथ्या प्रमाणित करने के लिये मैं जान की बाजी लगाने को भी तैयार था। मैं पूर्ण विश्वास से चुनौती देते हुये बोला, 'अगर मैं चला गया तो.....?'

'ज्योतिष छोड़ दूँगा।' छूटते ही उनका उत्तर था। वे चुनौती स्वीकार करने वाले भाव में मुस्करा रहे थे।

मैं वहाँ से उठकर चला आया। अब मैं कानपुर जाने के लिये कृत संकल्प था। कानपुर जाने के कार्यक्रम का मैंने पुनः निरीक्षण किया। प्रातः ५ बजकर १२ मिनट पर आसाम मेल जाती थी। मान लो कुछ हो गया और आसाम मेल छूट गयी तो....? मैंने सोचा कि तूफान मेल से जाने का कार्यक्रम बनाना चाहिये। यदि किसी कारण तूफान मेल छूट गयी तो आसाम मेल तो मिल ही जायेगी। तूफान मेल से जाने का मतलब साढ़े तीन बजे प्रातः घर छोड़ दूँ। माँ-बाप इतनी रात में मुझे अकेले निकलने न देंगे। उपाय भी तुरन्त सूझ गया। रात में घडी एक घंटा बढ़ा दूँगा डॉ. रसाल को नीचा दिखाने के लिये और उनके ज्योतिष-ज्ञान को झूठा सिद्ध करने के लिये मै कुछ भी करने को तैयार था। रात में ही सारा सामान बैग में रख लिया। सबके सोने के बाद एक घन्टा घड़ी बढ़ा दी और सुबह जल्दी उठ गया। मेरी खटर-पटर सुनकर झुंझलाते हुये मां उठी और जल्दी उठने के लिये बिगड़ी मैंने उन्हें घड़ी दिखायी। ४.२० हो चुके थे।

नये कटरे में 'डी' पार्क के पास किराये के मकान में हम लोग रहते थे। मकान का ऊपरी तल हमारा था। नीचे उतरने के लिये बाहर से ही सीढ़ियाँ बनी थी। उस समय ऐसी प्रकाश व्यवस्था न थी। सड़क पर बिजली के खंभों में ट्यूब लाइट और सोडियम लाइट की तो भूल जाइये सौ वाट के बल्व की व्यवस्था भी न थी। मेरे घर के सामने के बिजली के खंभे में एक बल्ब लगा था जो उन दिनों फ्यूज था। मुझे माँ छोडने बारजे तक आयीं। वहीं से नीचे उतरने वाली सीढ़ियाँ थीं। बारजे पर माँ का चरण स्पर्श कर उनका आशीर्वाद लेकर मैं नीचे उतरने के लिये सीढ़ियों पर झपटा। डॉ. रसाल की चुनौती का सामना करने के लिये मैं पूर्णतया तैयार था। बड़े जोश में था। शीघ्रता से सीढ़ियां उतरा। अन्तिम सीढ़ी पर पैर रपट गया.... मोच

आ गयी.... संभालते संभालते भी मेरे मुँह से कराह निकल गयी। अँधेरे में माँ कुछ देख न सकीं फिर भी आवाज पर पूछ पड़ीं – 'क्या हुआ? मैं सामान्य स्वर में बोला 'कुछ नहीं।' शीघ्रता से आगे बढ़ गया ताकि अपने सामने सामान्य रूप से मुझे जाते देखकर माँ निश्चिन्त होकर वापस घर के अन्दर चली जायें। वही हुआ। माँ ने दरवाजा बन्द कर लिया।

जिन सीढ़ियों पर मैं बचपन से चढ़ता उतरता था..... जिनपर कभी एक-एक कर नहीं चढ़ा-उतरा.... छलांग लगाकर दो-तीन एक साथ फलांगना मेरा स्वभाव था। नित्य कई बार उतरने चढ़ने के कारण सीढ़ियाँ शरीर का अंग सी थी। कभी पैर तक नहीं फिसला फिर आज अन्तिम सीढ़ी की गणना, अवचेतन मन कैसे भूल गया? अन्तिम सीढ़ी को ही जमीन समझने की भूल के कारण पैर रपट गया था। दायें पैर में मोच आ गयी थी। दर्द के कारण चलना कठिन हो रहा था। मैं पूरा पैर ठीक से नहीं रख पा रहा था। भचक-भचक कर चल रहा था। थोड़ी ही दूर पर शिव नारायण लाला (वर्तमान में जगराम) का चौराहा था। वहाँ पर रिक्शा मिल जायेगा। रिक्शा स्टेशन पहुँचा देगा। मन उत्साह से भरा था। डॉ. रसाल की बात झूठी प्रमाणित करने के लिये मैं उतावला था।

सौ डेढ़ सौ गज चलने के बाद दर्द बढ़ने लगा। दाहिना पैर शरीर का बोझ सहन नहीं कर पा रहा था। जमीन पर पैर रखते ही दर्द वढ़ जाता था। सूजन भी आ रही थी। चौराहा सामने दिख रहा था। बस दो चार कदम की ही तो बात है। मन स्वयं को सांत्वना दे रहा था। रिक्शे पर बैठते ही आराम हो जायेगा। लँगड़ा-लँगड़ा कर किसी तरह चौराहे पर पहुंचा। यह क्या? मन आश्चर्य से भर उठा–आज कोई रिक्शा न था। सामान्यतया ऐसा नहीं होता। दिन-रात यहॉ रिक्शा मिलता था। रात में रिक्शे वाले रिक्शे पर ही सोते मिलते..... चलने के लिये नखरा दिखाते, अपना भाव दिखाते किराया अधिक लेने का नाटक करते मगर रिक्शे वाले रहते अवश्य थे। मेरी जानकारी में पहली बार शिवनारायन लाला का चौराहा रिक्शाविहीन था। पैर मे असहनीय पीड़ा हो रही थी। मैं खड़ा नहीं रह पा रहा था, पास के पत्थर पर बैठ गया। मन बोला दस-पाँच मिनट प्रतीक्षा कर लो शायद

कोई रिक्शेवाला आ जाय। एक-एक मिनट मेरे लिये पहाड़ हो रहा था। यदि कोई रिक्शेवाला न आया तो....? गंभीर समस्या थी।

अब रिक्शा कटरा (नेतराम) चौराहे पर ही मिलेगा। सामान्य स्थिति में तो मेरे लिये कटरा चौराहा कोई समस्या न थी। मैं तो रेलवे स्टेशन तक पैदल जाने के लिये सोच चुका था। मेरे घर से रेलवे स्टेशन लगभग ४ किलोमीटर दूर था। इतना पैदल चलना मेरे लिये समस्या न थी। कुछ दूर दौड़ूँगा फिर चलूँगा.... दौड़ूँगा फिर चलूँगा इस तरह से लगभग ४० मिनट में मैं रेलवे स्टेशन पहुँचने की योजना बना चुका था। मगर पैर की मोच ने सारा सोच-विचार धराशायी कर दिया था। चार बज रहे थे। कोई रिक्शेवाला नहीं आया और प्रतीक्षा करना उचित नही लग रहा था। कटरा चौराहे तक पैदल चलने के अतिरिक्त कोई विकल्प न था। मैं उठा और चल दिया। पहला कदम जमीन पर रखते ही कराह निकल गयी। १५ मिनट के विश्राम से पैर सूज गया था। दर्द बढ गया था। मुझे क्या पता था कि बैठना मेरी परेशानी को और बढा देगा। मैंने तो सोचा था थोड़े विश्राम से आराम हो जायेगा। चलने में आसानी होगी। यहाँ तो सोच के विपरीत हो गया।

शरीर साथ नहीं दे रहा था, मगर मेरे संकल्प की दृढ़ता में कोई कमी न थी। कटरा चौराहे तक तो चलना ही है चाहे पैर कट कर गिर ही जाये। इस दृढ़ता से मैंने कदम आगे बढ़ाये। भयंकर पीड़ा थी। जब मुझे लगता कि दाहिना पैर जमीन पर न रख सकूँगा तो कुछ दूर एक पैर से ही फुदक-फुदक कर चलता। थोड़ी देर बार फिर दाहिना पैर जमीन पर रखता। कभी मार्ग में मिलने वाले बिजली के खंभे को पकड कर कुछ क्षण राहत ले लेता। संकल्प अब जुनूँन बन चुका था। मन प्राण में बस एक ही धुन थी– नेतराम चौराहे पहुँचना है। कभी दाँत भींचकर दर्द सहन करता कभी ऑख वन्द कर दर्द की शिद्दत से लड़ता, सुनसान सड़क पर मैं किस-किस तरह चला– आज याद करके आश्चर्य होता है। एक मुख्य बात जो उस दिन मेरे अनुभव में उतरी आज अपने पाठकों को भी बाँट रहा हूँ। दर्द में एक नशा होता है। पीड़ा में.... वेदना में भी एक लयबद्धता है। दर्द सीधा सपाट नहीं चलता। समुद्र की लहरों की तरह ऊपर-नीचे होता रहता है। दर्द जब चढ़ता

है तो आदमी दाँत भींच कर सहन करता है। दर्द जब उतरता है तो आह निकल जाती है, जितनी गहरी पीड़ा होगी उतनी ही गहरी आह भी होगी। आह दर्द के उतार का लक्षण है.... आराम देती है। यदि आप अपनी श्वासों के साथ दर्द का ताल-मेल बैठा सकें..... यदि दर्द की श्वास के साथ जुगलबन्दी बना सकें तो दर्द नशा बन जायेगा और उस नशे के झूले में झूलते हुये मैं कदम आगे बढ़ाता रहा। ये प्रक्रिया समुद्र में तैरने की प्रक्रिया जैसी है। समुद्र में तैरने वाले समुद्र की लहरों से ताल-मेल बैठा लेते हैं। लहरों के साथ उनका शरीर ऊपर-नीचे होता रहता है। जब ऊपर आता है वे श्वास भर लेते हैं। नीचे जाने पर दम साधे रहते हैं। यदि कोई दुख से सामंजस्य बना ले..... यदि पीड़ा को जीने की कला सीख जाय तो जीवन स्वर्ग से भी सुखमय हो जायेगा।

जगराम चौराहे से कचहरी तक तो मुझे होश था। मैं युद्धरत था। कचहरी से नेतराम चौराहे तक पहुँचने की यात्रा मैंने मदहोशी में की। मुझे न कुछ दिखाई दे रहा था.... न सुनायी दे रहा था। अपनी धुन में गिरता-पड़ता आगे बढ़ता जा रहा था। मैंने पूरी आंख तब खोली...... मैं होश में तब आया जब मैं नेतराम चौराहे पर पहुंच गया।

कटरा चौराहे पर तीन रिक्शे वाले थे। तीनों सो रहे थे। मेरे जगाने पर दो ने तो जाने से इन्कार कर दिया। तीसरा भी जाने के मूड में न था। उसने स्पष्ट इन्कार के स्थान पर ५ रु. की माँग की। उस समय कटरा चौराहा से रेलवे स्टेशन का किराया मात्र बारह आने था। पाँच रुपये की माँग बहुत अधिक थी। मैंने क़म करने को कहा तो रिक्शे वाले ने दो टूक जवाब दे दिया, 'चलना हो तो पाँच रुपये दो नहीं तो आगे बढ़ो।' कहकर वह पुनः सोने का उपक्रम करने लगा। लोग धनिकों द्वारा गरीबों के शोषण का रोना रोते हैं। मालिकों द्वारा श्रमिकों के शोषण के विरुद्ध नेतागिरी करते हैं। कभी किसी गरीब के चंगुल में फंस कर तो देखें? रात-बिरात रिक्शे टैक्सी वाले यदि आपकी विवशता भाँप लें तो देखिये कैसे ऐंठते हैं। उनकी टोन देखकर बात करने का अन्दाज देखकर ऐसी चिढ़ उठती है कि पैदल चले जायें मगर इन्हें रुपए न दें। मेरा अनुभव है कि निचले तबके के हाँथों यदि

आप फंस गये तो फिर आपकी खैर नहीं। मजदूर, राज, मिस्त्री, महरी, जमादारिन, कहारिन इन सबको यदि भान हो जाये कि उनके बिना काम नहीं चलेगा तो फिर उनकी कलायें देखिये। वैसे आज अधिकतर आदमी इसी प्रकार के हैं जो दूसरों की मजबूरी का लाभ उठाने से नहीं चूकते।

मेरे पास कोई विकल्प न था। झुकना ही पड़ा। ४.३० बजे थे। रिक्शेवाला बेमन से उठा। उसके हाव-भाव देखकर मन सहमा कि कहीं चलने से मना न करे। वो उठकर खड़ा हुआ। ओढी हुयी चादर तह करके सीट के नीचे रखी। मैं उछलकर सीट पर बैठ गया। रिक्शे वाले ने बीड़ी निकाली...... सुलगाई और पीने लगा। मुझे झुंझलाहट होने लगी। एक तो पैर में दर्द दूसरे कीमती समय का व्यर्थ होना..... तूफान मेल तो जा चुकी होगी अब आसाम मेल ही मिलनी थी। उसके छूटने का समय पॉच बजकर बारह मिनट था। रिक्शेवाले से कुछ कहने की हिम्मत नही हो रही थी कि कहीं मना न कर दे। जब धैर्य छूट गया तो अति विनम्र होकर भरसक चासनी घोलकर मैं बोला, 'भैय्या। जल्दी चलो.... नहीं तो ट्रेन छूट जायेगी।'

रिक्शेवाले ने मुझे देखा। बीड़ी का गहरा कश खीचा फिर बीड़ी फेंक कर चालक की सीट पर बैठ गया। मेरी जान में जान आयी। घड़ी देखी ४ बजकर ४० मिनट हो गये थे। पंद्रह-बीस मिनट में रिक्शेवाला स्टेशन पहुंचा देगा। टिकट खरीद कर प्लेटफार्म पहुँचने में पॉच मिनट लगेंगे। आसाम मेल हर प्रकार से मिल जायेगा। अतिशय दर्द होने पर भी मुझे अपनी विजय का हर्ष हो रहा था। रिक्शावाला मनमोहन पार्क के चौराहे से म्योहाल की ओर मुड़ा। मैंने दर्द के अहसास को हल्का करने के लिये तीन चार बार गहरी-गहरी सांस खींची और निकाली। अभी मैं अपनी क्रिया पूरी नहीं कर पाया था कि रिक्शा आहिस्ता-आहिस्ता रुकने लगा। क्रिया अधूरी छोड़कर मैंने रिक्शेवाले से पूँछा, 'क्या हुआ?'

रिक्शेवाला इत्मिनान से बोला, 'कुछ नहीं..... चेन उतर गयी है।' रिक्शे वाला सीट से उतरकर चेन चढ़ाने लगा। अँधेरे में चेन ठीक से चढ़ नहीं पा रही थी। मैं धैर्य खोने लगा। एक-एक मिनट कितना मूल्यवान था..... मैं ही जानता था। रिक्शे से उतरकर मैंने माचिस जलायी। उस रोशनी में रिक्शे

वाले ने चेन चढ़ायी। रिक्शा चल पड़ा। म्योहाल के चौराहे पर मैंने घड़ी देखी तो ४ बजकर ५० मिनट हो गये थे। मैं तनावग्रस्त होने लगा। १०-१५ मिनट तो स्टेशन पहुॅचने में ही लग जायेंगे। जल्दी से टिकट खरीदकर पांच मिनट में ट्रेन पकड़ लूॅगा। मन समय का हिसाब लगाने लगा। (उन दिनों ट्रेन लेट नहीं होती थी) ब्वायज़ हाईस्कूल के सामने से गुजरता हुआ रिक्शा अग्रवाल पेट्रोल पम्प की ओर बढ़ रहा था। 'जरा तेज चलाओ भैय्या।' मैने गिड़गिड़ाते हुये कहा। ढाल पर वैसे भी रिक्शा तेज चल रहा था। रिक्शेवाले ने मेरे अनुरोध पर पैडिल मार कर गति और बढ़ा दी। फरफराते हुये पेट्रोल पम्प का चौराहा गुजर गया। मुझे फिर अच्छा लगने लगा। हृदय में विजय का उल्लास उठने लगा, 'इस डॉ. रमा शंकर शुक्ल 'रसाल' से मैं ज्योतिष छुड़ा दूँगा। अपने को बहुत बड़ा ज्योतिषी समझता है। कहता है मैं सुपात्र नहीं हूँ...... तमसी हूँ..... पाखंडी! तेरा ज्योतिष का आडम्बर अब समाप्त होने वाला है।'

पौ फट रही थी। रिक्शा आटो सेल्स के सामने से सिविल लाइन्स की सड़क की ओर मुड़ा। तेजी से चलता रिक्शा आहिस्ता-आहिस्ता फिर रुकने लगा। मैंने व्यग्रता से पूँछा, 'क्या हुआ?'

रिक्शे वाला सामान्य स्वर में बोला, 'चेन फिर उतर गयी।' 'कैसी है तुम्हारी चेन?' मै झल्लाकर बोल पड़ा, 'अभी तो चढ़ायी थी.... फिर कैसे उतर गयी?'

'मशीनै तो है बाबू साहब।' रिक्शे वाला खड़ा होकर बहस करने लगा, 'एकै कौन भरोसा अबहिन तेज चलावा है न..... वही से उतरि गै।'

मैंने क्रोध दबाते हुये कहा, 'चलो...चलो जल्दी चढ़ाओ! नहीं तो मेरी गाड़ी छूट जायेगी।' यहाँ पर भी अँधेरा था। मुझे अपनी विवशता पर झुंझलाहट हो रही थी। मन कर रहा था कि उड़कर स्टेशन पहुँच जाऊँ। दो-तीन प्रयास के बाद चेन ठीक हुयी रिक्शा चल पड़ा। मैं रिक्शेवाले से पुनः गिड़गिड़ाया 'भैय्या! जल्दी करो..... तेज चलाओ नहीं तो ट्रेन छूट जायेगी।'

रिक्शेवाला चिढ़कर बोला, 'तेज चलै के कारण चेन उतरी है... अब जल्दी जल्दी न करो।' रिक्शावाले की आवाज में अकड़ थी। मन तो किया इसका मुँह तोड़ दूँ, मगर विवश था। 'काश! कि ट्रेन विलम्ब से आये... बस दस मिनट विलम्ब से ही मेरा काम चल जायेगा।'

जी.जी.आई.सी. के सामने से गुजरता हुआ रिक्शा पत्थर गिरजा के पास पहुँच रहा था। पाँच बजकर पाँच मिनट हो रहे थे। मन समय का हिसाब लगाने लगा दो तीन मिनट में स्टेशन पहुँच जाऊँगा। पाँच मिनट टिकट खरीदने में लगेंगे फिर प्लेटफार्म तक पहुँचने के लिये कम से कम पॉच मिनट चाहिये। अब टिकट खरीदने का समय न था। चलो बिना टिकट ही गाडी में बैठ जायेंगे। आगे जो होगा देखा जायेगा। रिक्शा चर्च के चौराहे से स्टेशन की ओर मुड़ा। नगर महापालिका के चौराहे के पास पहुंचते-पहुँचते जोर की आवाज हुयी। रिक्शे का ट्यूब बर्स्ट कर गया था। पलभर को मैं समझ न पाया कि क्या हो गया। समझते ही मैं उतरा, और बैग उठाकर भागने को उद्यत हुआ। रिक्शेवाले ने रास्ता रोक लिया। रुपये माँगे। बहस में उलझने का समय न था। मैंने जेब से पॉच रुपये का नोट निकाला और दे दिया। मैंने भरसक तीव्र गति से चलने का प्रयास किया। दायाँ पैर साथ नहीं दे रहा था। बीच-बीच में बाँयें पैर से कूदते हुये भी मैं दौड रहा था। जब सन्तुलन गड़बड़ाने लगता दायें पैर को ज़मीन पर रखना पड़ता। दायॉ पैर ज़मीन का स्पर्श पाते ही बिजली के करेन्ट की तरह झटका मारता था। पैर में काफी सूजन आ गयी थी। नगरमहापालिका चौराहे से रेलवे स्टेशन लगभग एक फर्लांग दूर है। स्टेशन पहुँच कर ओवरब्रिज पर चढ़ना था। फिर प्लेटफार्म पर पहुंचने के लिये ओवरब्रिज की सीढ़ियाँ उतरना भी था। मुझे एक ही धुन थी। गाड़ी निकलने न पाये। लक्ष्य पर दृष्टि केन्द्रित थी। मैं गिरता पड़ता स्टेशन पहुँचा। गेट पर खड़े टी.टी. से पूछा, 'आसाम मेल आ गयी?'

उसने लापरवाही से कहा, 'प्लेटफार्म नं. एक पर खड़ी है।'

मैं तीव्र गति से ओवरब्रिज की सीढियाँ चढ़ने लगा। दर्द के कारण

रह-रहकर चिहुँक उठता था 'हे ईश्वर! थोड़ी देर और..... बस मैं गाड़ी पर चढ़ जाऊँ।' मन से प्रार्थना निकली। मैं ब्रिज पर चढ़ गया और भरसक तेजी से पुल पर चढ़ने लगा। प्लेटफार्म नं. एक के ऊपर पहुँच कर मैं ब्रिज की सीढ़ियाँ उतरने को हुआ तभी मैंने प्लेटफार्म नं. एक से सीटी बजाकर गाड़ी को सरकते देखा। पास से निकलते हुये कुली से हड़बड़ा कर पूछा, 'कौन ट्रेन जा रही है?'

'आसाम मेल।' कुली के उत्तर ने मुझे पस्त कर दिया। सारा जोश ठंडा हो गया। ऐसा लगा जैसे गुब्बारे से हवा निकल गयी हो। पुल की रेलिग पकड़े एक पैर से खड़ा मैं आसाम मेल को रफ्तार पकड़ते देखता रहा। फिर मैं वहीं बैठ गया। मन ठहर गया। तन ठहर गया। समय ठहर गया। बड़ी देर तक सुध-बुध भूला मैं वहीं पड़ा रहा। होश आया तो ६ बज चुके थे।

घर वापस आ गया। घड़ी एक घन्टा बढ़ाने की बात खुल चुकी थी। सभी मुझ पर बिगड़ रहे थे। किस-किस की..... कितनी डाँट सुनी इस सबकी चर्चा व्यर्थ है। महत्वपूर्ण बात ये थी कि मेरा मन डॉ. रसाल से पराजित हो गया था। मैने स्वस्थ सरल मन से डॉ. रसाल के ज्ञान को स्वीकार लिया। ग्रह-नक्षत्रों की शक्ति को स्वीकार लिया। मनुष्य कितना क्षुद्र होता है। ग्रह नक्षत्रों को ललकारने वाला भाग्य फल पर विश्वास न करने वाला.... ज्योतिष ज्ञान को पाखंड समझने वाला मनुष्य भी इन ग्रहों के प्रभाव में होता है। किसी का मंगल बली होता है तो कोई शनि से प्रभावित होकर अपने को महान शक्तिशाली...... पुरुषार्थ वाला समझने लगता है। ईश्वर की सत्ता को भी चुनौती देता है। ये ठीक उसी प्रकार है जैसे कोई सूर्य को गाली दे और उस पर ढेला पत्थर फेंके..... अरे सूर्य को इससे क्या लेना-देना कि मनुष्य उसे ढेला फेंके या जल चढ़ाये। इन प्रक्रियाओं के द्वारा हम स्वयं को उन्नत करते है या गिराते हैं।

मैंने पूरी शक्ति सामर्थ्य और दृढ़ विश्वास से कानपुर जाने का प्रयास किया किन्तु न जा सका। अब मेरे अन्दर ज्योतिष सीखने की इच्छा उत्पन्न हो गयी। तीन-चार दिन मैं बिस्तर पर पड़ा रहा। भविष्य ज्ञान का अपना

आनन्द है। कल क्या होगा? यदि आज ज्ञात हो तो कितना मजा आये, मगर क्या डॉ. रसाल मुझे सिखायेंगे? वो तो इतना चिढ़ते हैं। हर समय तिरस्कृत करते रहते हैं। अपमानित करने का कोई अवसर नहीं चूकते। सदैव जली-कटी सुनाते रहते हैं। मैं भी तो तुर्की-ब-तुर्की जवाब देता हूँ। कभी उनसे दबता नहीं..... उनका लिहाज़ नहीं करता। वे विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष रहे हैं...... उम्र में इतना बड़े हैं। ज्ञान से इतना समृद्ध हैं। मुझे उनसे मुँहलगी नहीं करनी चाहिये। यदि वे दो चार शब्द गलत भी बोलें तो सहन करना चाहिये। अगर उनसे कुछ पाना है तो सहना पड़ेगा। प्राचीन काल में गुरुकुल परम्परा के अन्तर्गत गुरु शिष्यों से कितना कठोर व्यवहार करते थे मगर शिष्य गुरु के आदेश का पालन करते थे। कैसा भी आदेश हो उसकी अवज्ञा नही होती थी। गुरु के प्रति सम्मान में कोई कमी नही होती थी। शिष्य कभी मर्यादा का अतिक्रमण नही करता था। बिस्तर पर पड़े-पड़े मैं यही सब सोचता रहता। डॉ. रसाल से ज्योतिष ज्ञान की प्राप्ति के लिये वैचारिक तल पर मैंने मन को तैयार कर लिया था।

स्वस्थ होकर मै डॉ. रसाल के पास पहुँचा। मुझे देखते ही उनकी बॉछें खिल गयीं। व्यंग्यपूर्ण मुस्कान के साथ बोले, 'कानपुर हो आया?'

मैंने पराजय स्वीकार करते हुये सिर झुका कर बोला, 'पैर में मोच आ गयी..... नहीं जा सका।'

'मै जानता था।' डॉ. रसाल आत्मविश्वास से बोले, 'तू नहीं जा पायेगा.... बड़ा अकड़ रहा था..... कह रहा था मेरा ज्योतिष छुडा देगा..... कहाँ गयी तेरी अकड़?'

मैने समर्पण किया, 'मान गया आपके ज्ञान को डॉ. साहब......।' 'अब कभी बकवास न करना।' डॉ. रसाल मुझे डाँटते हुये बोले, 'जब मैं कोई कुंडली बाँच रहा होऊँ बीच में मत बोलना। मेरी बातों के विरुद्ध कुछ न बोलना।'

उनकी आदेशात्मक ध्वनि को मैं विनीत भाव से हृदयंगम कर रहा था। उनके चरण स्पर्श कर अनुनय भरे स्वर में मैंने क्षमा याचना की। डॉ. रसाल

अकड़ गये। आज पहली बार लौंडा काबू में आया है शायद इसी कारण उनकी खुशी बढ़ती जा रही थी। खुशी के आवेग में वे अपनी प्रशस्ति सुनाने लगे। अपना गुण-गान गाने लगे। तरह-तरह की बातें जैसे 'फलाना अपने आपको बड़ा ज्ञानी समझता था। एक दिन मुझसे टकरा गया। वो पटकनी मारी कि स्साले का सारा ज्ञान भूल गया। भौचक्का रह गया। मैंने कहा स्साले अनपढ़ गँवारों में ज्ञान बघारा करो..... हम जैसे लोगों के सामने बोलने के पहले सौ बार सोचा करो.....।' इसी तरह आत्म प्रशस्ति की कई घटनायें सुनी। लगभग एक घन्टे बाद, अवसर पाकर मैंने निवेदन किया, 'डा. साहब! मुझे भी थोड़ा ज्योतिष सिखा दीजिये।'

डॉ. रसाल ठठाकर हँस पड़े। तिरस्कार पूर्वक बोले, 'तमसी! तू सात्विक ज्ञान के लिये उपयुक्त पात्र नहीं है।'

हीन भावना से मेरे नयन भर आये। कातर होकर उनके चरणों से लिपट गया, 'मैं परिश्रम में कोई कमी न करूँगा दिन रात..... एक कर दूँगा। एक मौका तो दीजिये..... मैं अपनी पात्रता प्रमाणित कर दूँगा।'

डॉ. रसाल ने निर्ममता से अपने पैर खींच लिये और रुष्टता से बोले, 'ये मजदूरी नहीं है जो शारीरिक श्रम से सफलता मिले.....। ये साधना का पथ है तपस्या है..... सात्विक विधा है...... तेरे वश की बात नहीं.....।' कहकर वे घर के अन्दर चले गये। मैं टूट गया। मन बिखर गया। अपने स्वभाव के विपरीत समर्पण किया। डॉ. रसाल के समक्ष झुक गया। प्रार्थना की, मगर उन्होंने निष्ठुरता से मुझे तिरस्कृत किया। मेरे हृदय के भावों को कुचल दिया। मैं ज्योतिष शास्त्र के लिये पात्र कैसे नहीं हूँ? हर साल अच्छे नम्बरों से पास हो रहा हूँ..... एकाग्र मन से हर चीज कंठस्थ कर लेता हूँ..... लगन से परिश्रम से प्राप्त कर लेता हूँ फिर ज्योतिष ज्ञान क्यों नहीं प्राप्त कर सकता? ये सब चाल है। ये आदमी मुझे कुछ नहीं समझता..... इसकी नज़र में मैं कीट-पतिगों से अधिक अहमियत नहीं रखता.... न जाने क्यों मुझसे ऐसा चिढ़ता है जैसे मैंने इसकी गठरी लूट ली हो। ये ढोंगी है। पाखंडी है। पर अपने आपको कवि कहता है.... कोई कवि इतना संवेदनहीन हो ही नही

सकता कि बच्चे को इस तरह दुत्कार दे। मेरे हृदय की व्यथा से स्पन्दित न हुआ.... मेरी प्रार्थना का इसपर कोई प्रभाव न पड़ा..... ये कैसा कवित्व है.... कैसी सात्विकता है जो कसाई की तरह मेरा हृदय चाक कर रही है। ये कैसा ज्ञानी है जो बच्चे को हताहत करके आनन्दित हो रहा है। मेरे मन में तरह-तरह की प्रतिक्रिया होती रहती है। अतिशय नम्रता प्रगट करने का क्षोभ और डॉ. रसाल का कठोर व्यवहार मुझे गहरी पीड़ा देता रहा। बहुत दिन तक मैं डॉ. रसाल के पास न गया। उनकी बातें भुलाये न भूलतीं। उनका ज्ञान मुझे आकर्षित करता मगर अपमान याद आते ही मन वितृष्णा से भर जाता। महीनों संघर्ष चला। ज्ञान का आकर्षण जीत गया। मैंने सोचा अपमान का कारण मै स्वयं हूँ–न ज्योतिष सीखने की प्रार्थना करता न अपमानित होता। अब निजी बात न करूँगा। अपने लिये कुछ न मागूँगा। उनका सान्निध्य मात्र प्राप्त करूँगा। जैसे पहले संबंध जी रहा था वैसे ही जिऊँगा। नम्रता का खोल भी न ओढूँगा। संबंध वैसे ही चलेंगे बराबर के।

मैं गया। दो तीन वर्ष तक जाता रहा। उनके पास आने वाले लोगों को देखता। जन्म-कुंडली का फल बताते हुये डॉ. रसाल की आँखों की चमक देखता। उनकी बातें सुनता।

एक दिन दोपहर में उनके पास एक अधेड़ व्यक्ति आया। निराशा और दीनता उसके मुख पर छायी थी। वह कुर्ता धोती पहने था। उसने साष्टांग दंडवत किया। डॉ. रसाल पहले से ही खुश थे। उसके दंडवत ने उन्हें और भी खुश कर दिया। दर्प से उन्होंने मेरी तरफ देखा। मैं ऊपर से निर्विकार बना रहा। डॉ. साहब ने उसे पास बैठाया और आत्मीयता से पूछा, 'कौन हो? कहाँ से आये हो?'

वह व्यक्ति दया के स्वर में बोला, 'बनारस का रहने वाला हूँ..... मुसीबत का मारा हूँ..... कोई मार्ग दिखायी नहीं दे रहा..... किसी ने आपका नाम लेकर कहा कि वही ज्ञानी पंडित हैं, समस्या सुलझा सकते हैं।' कहते-कहते उस व्यक्ति ने अपने झोले में हाँथ डालकर एक बड़ा सा चाँदी का कटोरा निकाला और मेज पर रख दिया। 'ये हमारे खान्दान की निशानी है।' उसने

पुनः बोलना प्रारंभ किया, 'रईसी शाश्वत नहीं है। ताल्लुकेदार का वंशज हूँ। अपार धन था। बाप दादों ने एय्याशी में गँवा दिया। अब तो बस किसी तरह दो वक्त की रोटी चल रही है। सिर पर लड़की के विवाह का दायित्व है। शादी के लिये धन की आवश्यकता है। इस कटोरे को बेचने निकला। बनारस के सर्राफे में घूमा। किसी ने सौ रु. लगाया...... किसी ने दो सौ लगाया किसी ने हज़ार लगाया किसी ने दस हजार लगाया। इतना अधिक अन्तर देखकर मैं निर्णय न ले सका। मित्रों ने इलाहाबाद आने की सलाह दी। मैं यहां के सर्राफे में घूमा। यहाँ भी दो हजार से पच्चीस हजार तक मूल्य लगाया गया। मैं समझ नहीं पा रहा कि इसका वास्तविक मूल्य क्या है? मैं किस मूल्य पर बेच दूँ? मैं तो यह भी नहीं जानता कि इस कटोरे की क्या विशेषता है?'

उस व्यक्ति की बात सुनकर मैंने डॉ. रसाल की ओर ध्यान दिया। वो उस कटोरे को अपनी पारखी नज़रों से तौल रहे थे। चाँदी के उस बड़े कटोरे में विभिन्न आकार के रत्न जड़े थे। उसमें नौ ग्रहों से संबंधित रत्न थे। कितने थे और कितनी संख्या थी यह बताना तो बड़ा मुश्किल है। डॉ. साहब उस कटोरे को लेकर दरवाजे के बाहर निकले। सूर्य के प्रकाश में उसे देखा। इधर से देखा। उधर से देखा। उलट-पलट कर देखा। ठोंक बजाकर देखा। आकर पलंग पर बैठ गये। मेरी ओर देखकर बोले, 'जरा सा दूध ले आओ।'

मैं उठकर फौव्वारे वाले चौराहे पर गया। हलवाई की दुकान से कुल्हड़ में दूध लेकर आ गया। डॉ. रसाल ने दूध कटोरे में डाल दिया। अपने तकिये के नीचे से होम्योपैथिक की दवाई जैसी शीशी निकाली उस शीशी से कोई तरल पदार्थ दो बूँद कटोरे में डाल दिया। दूध का रंग बदल गया। डॉ. साहब का चेहरा खिल गया। उनकी प्रसन्नता किसी बच्चे की तरह सरल और निर्दोष थी। किसी अन्वेषणकर्ता को अपने अन्वेषण में या किसी खोजकर्त्ता को अपने गंतव्य तक पहुँचने में जो खुशी मिलती है वैसी ही खुशी थी। बोले, 'रजवाड़े की चीज है....... इसका सही दाम यहाँ कौन स्साला दे सकता है। अच्छा दाम पाना चाहते हो तो बम्बई जाना पड़ेगा।' कहते-कहते

डॉ. साहब ने अपनी बिल्लौरी आंखे उस की आँखों में डाल दीं। वह सामान्य व्यक्ति डॉ. साहब का तेज कैसे सहन कर पाता। गड़बड़ा गया। नज़रें झुकाकर नम्र स्वर में बोला, 'आपका आदेश होगा तो चला जाऊँगा, पंडितजी! मगर इस कटोरे की विशेषता क्या है?'

डॉ. रसाल मुस्कराते हुये बोले 'इसमें रखा हुआ खाने का पदार्थ यदि विषैला होगा तो उस पदार्थ का रंग बदल जायेगा। नौ रत्नों का ऐसा आनुपातिक संयोग बनाया गया है कि जीवन के लिये हानिकारक वस्तु इस कटोरे में आकर स्वयं संकेत देने लगेगी। राजा महाराजा अमीर लोग जिन्हें अपने घरवालों से भी भय रहता है उनके लिये यह बहुमूल्य है। वे इसे मुँह मांगे मूल्य पर खरीद लेंगे।'

'मैं ऐसे लोगों को कहाँ पाऊॅगा?' वह व्यक्ति निराश स्वर में बोला 'इसीलिये तो मैं बम्बई जाने को कह रहा हूँ।' डॉ. रसाल बलपूर्वक बोले 'वहाँ मैं क्या करूँगा.....?' उस व्यक्ति ने उसी स्वर में प्रश्न किया।

डॉ. रसाल बड़े उत्साह में थे। उन्होंने उसे बम्बई शहर में कोलावा जाने को कहा। कोलाबा में किसी सड़क पर बने होटल का पता बताया। एक कागज़ पर नक्शा बनाकर उन्होंने उस व्यक्ति को अच्छी तरह समझाया। उन्होंने रात आठ बजे तक होटल के हाल में पहुँच जाने का निर्देश दिया। हाल के पश्चिम-दक्षिण कोने की एक मेज का हवाला दिया। उस मेज पर लोग ८.३० बजे के बाद बैठना प्रारंभ करते हैं। जब पाँच छै आदमी बैठ जायं तो उस मेज पर जाकर कटोरा रख देना और कह देना कि 'बेचना है।' इसके अतिरिक्त एक शब्द भी मत बोलना। सारी कार्यवाही चुपचाप देखते रहना। जितना मूल्य वहाँ मिल जायेगा उससे अधिक और कहीं मिलना मुश्किल है। वह आदमी सारी बातें अच्छी तरह समझकर चला गया। मैं भी उठकर चला आया।

कुछ दिनों बाद की बात है। मैं पहुँचा ही था कि वह आदमी आ गया। डॉ. रसाल के पैरों पर गिर पड़ा। हर्षातिरेक में उसकी ऑखों में आँसू आ गये थे। उसने अपनी गठरी खोल दी। गठरी रुपयों से भरी थी। विनीत

समर्पित स्वर में बोला, 'ये तीन लाख रुपया मिला है डॉ. साहब! आप जो चाहें ले लें..... सब आपका ही है।

मेरी आँखें विस्मय से खुली की खुली रह गयीं। उस समय तक इतना अधिक रुपया एक साथ मैंने नहीं देखा था। उस व्यक्ति ने पूरा धन डॉ. रसाल के सामने बिखरा दिया था। उसकी बात सुनकर डॉ. रसाल गुस्से से फट पड़े। कल तक पैसे-पैसे को तरस रहा था आज मुझे रुपये दिखा रहा है? जा लड़की की शादी कर और धन्धा पानी कर के घर को संभाल।'

वह आदमी पुनः कुछ कहने को हुआ मगर डॉ. रसाल बिगड़ गये. 'उठा अपनी गठरी...... निकल यहाँ से चल भाग.....।' डॉ. रसाल दहाड़ने लगे। वह आदमी घबड़ा गया। शीघ्रता से अपनी गठरी बांधी और जब तक डॉ. रसाल ने उसे खदेड़कर अपने कमरे से बाहर नहीं निकाल दिया पलंग पर न बैठे। मैं भी उस आदमी के पीछे-पीछे बाहर निकला। मुझे घटना-क्रम जानने की बड़ी उत्सुकता थी। उस आदमी ने बताया कि डॉ. रसाल के निर्देशानुसार वह शाम को आठ बजे उस होटल के हाल में पहुँच गया था। कोने की मेज पर लगभग नौ बजे लोगों का बैठना प्रारंभ हुआ। मैंने मैनेजर से जानकारी ले ली थी। उसने बताया था कि उस मेज पर बम्बई शहर के दलाल बैठते हैं। वे दलाल रत्नों, जवाहरातों और पुरानी वस्तुओं की खरीद फरोख्त करते हैं। जब वहां छह-सात दलाल बैठ गये मैं वहां पहुंच गया। कटोरा निकालकर मेज पर रख दिया और कह दिया कि– 'बेचना है।'

एक-एक कर सबने उस कटोरे को उलट-पलट कर देखा फिर आपस में ही नीलामी प्रारंभ की। बोली पचास हजार रुपये से प्रारंभ की। बोली पचास हजार रुपये से प्रारंभ हुयी थी और डेढ लाख तक गयी। डेढ़ लाख पर सौदा तय होने वाला था कि दूर किसी अन्य मेज पर बैठा एक बूढ़ा दलाल वहाँ आया। उसने कटोरा उठाकर एक नज़र देखा फिर झटके से बोला, 'ये स्साले इसका दाम क्या देंगे.....। मैं तीन लाख दूँगा।' कोई कुछ न बोला। उस बूढ़े दलाल ने वहीं तीन लाख रुपये गिनकर दे दिये और कटोरा ले लिया। मैं घबरा रहा था। बम्बई महानगरी में रात में तीन लाख

रुपये लेकर मैं अपने ठहरने के स्थान तक सही सलामत कैसे पहुँचूँगा? उस बूढ़े दलाल ने मेरे भय को समझ लिया। मुझे इत्मिनान दिलाया। टैक्सी करके मुझे अपने साथ बैठाया और मेरे ठहरने के स्थान तक सकुशल पहुँचाया। कहते-कहते वह भावुक हो गया। उसका हृदय डॉ. रसाल के प्रति कृतज्ञता से भरा था। उसके रोम-रोम से डॉ. साहब के लिये आशीष निकल रहे थे। वह डॉ. रसाल के लिये कुछ भी करने को तैयार था। डॉ. रसाल सलाहकार दक्षिणा के रूप में उससे धन ले सकते थे मगर लेने की कौन कहे उन्होंने तो उसके धन का स्पर्श तक न किया।

डॉ. रसाल के अन्दर बैठा हुआ 'आदमी' बहुत बड़ा था। उनके ज्योतिष-ज्ञान और अन्तर्दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण वह अहमियत थी। अपने जाने तो उन्होंने मुझे कुछ न दिया। आज सोचता हूँ कि अनजाने में उनसे बहुत कुछ मिला। बहुत समय तक उनके कटु रुक्ष व्यवहार की शिकायत थी। बाद में मैंने सोचा वे मेरा भविष्य जानते थे। इसलिये उन्होंने कभी सहिष्णुता नहीं दर्शायी। वे जानते थे (संभवतः) कि ग्रह-नक्षत्रों से मेरा संबंध ज्योतिषी की हैसियत से नहीं तांत्रिक की हैसियत से बनेगा।

ये सत्य है कि आज ज्योतिष के प्रकांड विद्वान मुझे मान्यता देते हैं। समाज में मेरा अपना स्थान है मगर यह भी सत्य है कि व्यक्ति को देखकर उसके ग्रह-नक्षत्र समझ लेने वाला सुशील ज्योतिष शास्त्र का सात्विक ज्ञान विधिवत नहीं सीख पाया। ग्रह-नक्षत्रों को तांत्रिक प्रक्रियाओं से आदेशित करने की सामर्थ्य रखने वाला, वेद-उपनिषदों की आचार-संहिता नहीं सीख पाया। तंत्र की यात्रा के इस अन्तिम चरण में याद आती तुम्हारी आवाज – 'तमसी' मुझे झकझोर देती है। किशोर बनकर उसी तरह तुम्हारी गाली सुनने की इच्छा बलवती होने लगती है। धन्य थे तुम डॉ. रसाल.....। धन्य हो तुम। और मेरी दृष्टि में सदैव धन्य रहोगे!

■ ■ ■

वह था कौन?

प्रयाग नगर आध्यात्मिक तरंगों से पर्याप्त रूप से संपन्न है। काशी के बाद प्रयागराज का ही नंबर है। कुछ साधक प्रयागराज एवं काशी की आध्यात्मिक गरिमा में गुणात्मक भेद करते हैं। उनकी दृष्टि में प्रयाग का वातावरण साधना के लिये काशी से अधिक उपयुक्त है। गंगा का किनारा, शिव-मन्दिर एवं श्मशान; श्मशान भी ऐसा जहाँ प्रातः से रात्रि तक धू-धू कर जलती हुई चिताओं की गिनती कर पाना दुष्कर है। एक-एक बार में ५-६ चिताएँ एक साथ जलती रहना सामान्य घटना है। दारागंज के श्मशान तक सड़क न होने के कारण वाहनों का जाना संभव नहीं है। इसीलिये रसूलाबाद के श्मशान के दिन चमक उठे हैं। पूरे शहर के शव यहीं आते हैं। आजकल तो श्मशान की साँझ सिविल लाइन्स की जगमगाती सड़कों से भी अधिक जगमगाती रहती है। सोडियम लाइटों की भव्य कतारें बम्बई के जूहू-बीच को भी लजाती नजर आती हैं।

आज से १४ वर्ष पूर्व रसूलाबाद का श्मशान वास्तव में श्मशान था। न तो प्रकाश की व्यवस्था थी, न शहीद स्मारक बना था। न कोई प्रतीक्षालय था और न कोई रेलिंग बनी थी। सूर्यास्त के बाद मनुष्य तो दूर जल्दी कोई पशु-पक्षी भी फटकने की हिम्मत न कर पाते थे। गहरे, अंधेरे वियाबां में कुछ रह रह कर चमगादड़ों की चिचियाहट, अच्छे मजबूत हृदय के व्यक्ति को भी भयभीत करने के लिये बहुत थी। भयभीत होकर चिल्लाने पर किसी की मदद की कोई गुंजाइश न थी। हाँ, आहट पा कर कुत्ते भौंकते हुए आ कर और भी, अधिक भयानक स्थिति पैदा कर देते थे। दिन की उजली, पवित्र पावन गंगा रात के अंधेरे में काली नदी दिखती थी मानो महाकाली मानव-रक्त से अपना खप्पर भर रही हो।

कोई भी तंत्र-साधक ऐसे वातावरण के लिये लालायित रहता है। विशेषतया जबकि श्मशान के ठीक सामने तंत्रोक्त विधि से प्रतिष्ठित शिव लिंग भी हो। वह विलक्षण शिव-मन्दिर है। जिसमें तंत्र की ऊर्जापूर्ण जागृत तरंगें, आज भी विद्यमान हैं। उसकी शक्तिशाली तरंगें सामान्य व्यक्ति को वहाँ पर टिकने नहीं देतीं। गत १६ वर्षों से मैं देख रहा हूँ जाने कितने साधक आये और चले गये। ३ वर्षों से अधिक तो कोई भी साधक नही रह सका। धर्मवीर भारती ने कभी धर्मयुग में लिखा था कि ख्यातिप्राप्त महाकवि निराला भी यहाँ पूजा किया करते थे। विजयलक्ष्मी पंडित के पति के शव का दाह-संस्कार इसी रसूलाबाद श्मशान घाट में हुआ था। वर्षा के कारण जलती चिता को बीच में छोड़ घर के सब लोग चले गये। निराला ही शव जलने के अन्तिम क्षण तक यहाँ रहे थे। निराला का साहित्यिक मूल्यांकन करने की धृष्टता तो मैं नही कर सकता किन्तु एक बात मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि निराला पक्के औघड़ थे।

तंत्र पौरुषेय है। पौरुष किसी भी चुनौती को अस्वीकार नहीं करता। प्रकृति की माया की इठलाती-- मदमाती चुनौतियाँ... कि आओ... ! अगर दम है तो मेरे रहस्य को जानो... मुझे अनावृत्त करो...। मैं कभी भी ये चुनौतियाँ अस्वीकार न कर सका। तंत्र के क्षेत्र में प्रवेश करने के बहुत से कारणों में एक प्रमुख कारण यह भी है।

यह फरवरी १९८१ की घटना है। मैं नित्य रात्रि, शिव मन्दिर में साधना हेतु जाता था। एक सांझ लगभग ५ बजे ही प्रेरणा उठी और मैं उधर चल दिया। शिव-मन्दिर में घुसने के बाद मैंने देखा कि बाबा कुर्ता पहन रहे थे। अपने स्थान पर खड़े हो कर मैं उनकी गतिविधियाँ देख रहा था। उन्होंने कुर्ता पहन कर जेब में हाथ डाला और मेरी ओर देखा। मुझे ऐसा लगा जैसे वे भूखे हैं और कुछ खाना चाहते हैं। मैंने पूछा "बाबा ! कुछ खायेंगे ?" उन्होंने गहरी दृष्टि मुझ पर डाली। वह दृष्टि आँखों से हृदय में उतर कर मनोभावों को पढ़ रही थी। मैंने मुस्कुराते हुए पुनः आग्रह किया, "कुछ खा लीजिये !" कुछ पलों तक देखते रहने के बाद उन्होंने सहमति में सर हिलाया।

मैं तुरन्त अपना झोला वहीं छोड़ मन्दिर से बाहर आया। मेरे पीछे-पीछे उन्होंने अनुसरण किया। घाट पर चाय की दो-तीन दुकानें थीं जिनमें खोये की मिठाई-पेड़ा, बर्फी भी रहती थी। एक दुकान पर जा कर मैंने कहा, '२५० ग्राम बर्फी दे दो।' दुकानदार ने दोने में बर्फी तौल कर मेरी ओर बढ़ाई तो मैंने पुनः दुकानदार की ओर देखा। दुकानदार ने घबरा कर हाथ पीछे खींच लिया। मुझे अजीब लगा। अतः जरा जोर से लगभग डाँटने के स्वर में मैं बोला, "बाबा को बर्फी दो न !" दुकानदार ने डरते-डरते हाथ आगे बढ़ाया। बाबा ने दोना ले लिया। दुकानदार के विस्मय की सीमा न रही। मैंने फिर कहा, "बाबा जब बर्फी खा लें तो दो गिलास चाय बना देना।" साहस कर दुकानदार बोला, "बाबा बर्फी यहाँ नहीं खायेंगे।" मैंने कहा कि फिर चाय बना दो। उसने चाय दी। हम लोगों ने चाय पी और फिर मैं मन्दिर चला गया। थोड़ी देर बाद जब मैं उधर से गुज़रा तो दुकानदार ने हाथ दे कर मुझे रोका "भैय्या ! ई बाबा आपका कहाँ मिल गयेन !" 'काहे ? का होय गवा ?" मैंने पूछा।

अचरज से दुकानदार की आँखें, फैली थीं बोला, "ई तो कौनों का खातै नहीं हन। न कौनों की चीज़ लेत हन। लोग मिठाई, फल, रुपया सब देत हन मगर ई तो छूतौ नाहीं हन।"

अब मैं चौंका, "तो फिर ये क्या खातें हैं ?" दुकानदार रहस्यमय स्वर में बोला, "भैय्या ! आजतक कौनों इनका खात नाहीं देखिस न सोवत देखिस है और न बोलत सुनिस है। ई आपके मिठाई कैसे लै लिहिन ?" मैं, अपने हृदय में उठते हुए आश्चर्य के भावों को छिपाता हुआ वहाँ से चल दिया। सोचता रहा कि लगभग १ वर्ष से मैं इन्हें देख रहा हूँ । मेरा इनका मन्दिर का साथ है। नित्य जब मैं आता हूँ तो ये निकलते हुए और जब मैं निकलता हूँ तो ये आते हुए मिलते हैं। आते जाते सम्मान सहित मैं अभिवादन करता हूँ और ये अधिक नम्रता पूर्वक अधिक झुक कर प्रति उत्तर देते हैं। मैंने कभी सोचा ही नहीं कि ये हैं कौन ? कहाँ से आये हैं ? अपनी धुन में लगे साधक को दूसरों की ओर झाँकने की फुरसत कहाँ ? मन-प्राण तो चौबीसों

घंटे लक्ष्य पर केन्द्रित रहता है। किन्तु अब प्रश्न उठ गया था कि ये हैं कौन ? गृहस्थ होने के नाते इनके भोजन की व्यवस्था करना मेरा धर्म है। मैने पत्नी से चर्चा की तो पत्नी ने स्वयं सुझाव दिया कि मैं नित्य पराठा सब्जी बना दिया करूंगी आप लेते जाइये। तो यही तय हुआ कि मैं प्रतिदिन भोजन ले जाया करूँगा और वहीं शिव-मन्दिर में छोड़ दूँगा।

दूसरे दिन जब मैं भोजन ले कर मन्दिर पहुँचा तो देखा बाबा निकलने को तैयार खड़े थे। मैंने उनसे कहा, ''बाबा ! भोजन लाया हूँ। कृपया इसे स्वीकार करें और मैं प्रतिदिन इसी प्रकार भोजन लाया करूँगा।'' बाबा ने मुस्करा कर इस प्रकार के भाव प्रकट किये जैसे उन्हें सब कुछ पहले से ही ज्ञात था। उनकी रहस्यमय मुस्कराहट मुझे विचित्र लगी। मेरे मन में वही प्रश्न पुनः उभर आया– आखिर ये हैं कौन ? इन्हें मेरे हृदय की हर बात पता चल जाती है। मेरा आना-- मेरा जाना-- मेरी दिनचर्या--- मेरे हृदय में उठते हुए भावों को ये जान जाते हैं। यह अन्तर्यामी कहीं साक्षात शिव तो नहीं– जो मेरी तपस्या से खुश हो मनुष्य रूप में अवतरित हो मेरी परीक्षा ले रहे हों ? या फिर ये श्मशान का अधिपति काल भैरव तो नहीं ! गत ९ वर्ष से इन्हें देख रहा हूँ। मैं भी कितना निस्पृह... कितना मूढ कि कभी यह व्यक्तित्व खटका ही नहीं... ! दिन-रात चौबीसों घंटे इस स्थल पर रहने वाला सामान्य मनुष्य तो हो ही नहीं सकता। यदि यह शिव या उनका कोई गण नहीं तो फिर विलक्षण शक्तियों से संपन्न कोई सिद्ध पुरुष ही होगा। कहीं ये 'योगी कथामृत' में वर्णित सिद्धाश्रम के संचालक महायोगिराज परमहंस गुरुदेव महाराज तो नहीं... जो मुझे क्रिया योग में दीक्षित करने आये हैं और मेरी श्रद्धा निष्ठा की परीक्षा ले रहे हों। ''छोड़ो ये सब बातें।'' मैं स्वयं से बोला, ''आरंभ करो अपनी पूजा।'' किन्तु पूजा के क्रम में रह रह कर बाबा का खयाल मन को झंझोड़ता रहा। पूजन समाप्त कर जैसे ही उठा देखा सामने बाबा खड़े हैं। जिज्ञासा, धैर्य छोड़ कर बाहर आया, ''बाबा ! आप हैं कौन ? कहां से आये हैं ?'' उन्होंने मेरे प्रश्नों पर कोई ध्यान नहीं दिया और अपना आसन जमा कर पूजन प्रारंभ कर दिया। अनिच्छा से मुझे वापस

लौटना पड़ा। रास्ते भर सोचता रहा। घर आ कर पत्नी से भी चर्चा की कि क्या सचमुच मुझे एक सिद्ध व्यक्ति मिल गया था ? कलियुग में किसी सिद्ध पुरुष का मिलना बहुत बड़ी बात है। ढोंगियों, पाखंडियों के इस समाज में ईमानदार साधक ही नज़र नहीं आता, सिद्ध पुरुष की तो बात ही क्या ?

पत्नी ने कहा "छोड़िये ! आप हर बात को तिलिस्मी दृष्टिकोण से देखते हैं। अरे, वह एक साधु हैं, बस ! ज्यादा सोचिये विचारिये मत।" मैं चुप हो गया।

दूसरे दिन कार्यालय में मैंने अपने मित्र अशोक संड से बाबा की चर्चा की। मेरे प्रिय मित्र अशोक मेरी हर बात ध्यान और रुचि से सुनते हैं। बात उन्हें चाहे विश्वसनीय लगे या न लगे। वे तर्क नहीं करते, न ही अपना कोई मत व्यक्त करते हैं। मेरे जीवन के बहुत से अनुभवों के साक्षी हैं। एक साधक को सदैव एक घनिष्ठ मित्र की आवश्यकता रहती है। जिसे वह अपने अनुभवों का साक्षी बना सके। अनुभव जब हृदय में हलचल मचा दे तो उसे व्यक्त करने में ही शान्ति मिलती है। सुनने के बाद अशोक संड के मन में भी जिज्ञासा उत्पन्न हुई और बाबा को देखने वह भी घाट पर आये किन्तु कुछ कहा नहीं।

मैं प्रतिदिन भोजन ले कर जाने लगा। भोजन शिवलिंग के पास रख कर मन्दिर से वापस चला आता था। बाबा अपने ढंग से खा लिया करते थे। जब-तब मैं बाबा से प्रश्न किया करता था किन्तु बाबा कोई उत्तर नहीं देते थे। मै कभी १० बजे रात को कभी ४ बजे सुबह, कभी १२ बजे दिन तो कभी रात्रि २ बजे मन्दिर गया। आश्चर्य यह था कि बाबा सदैव जागृत अवस्था में पलथी मारे बैठे जप करते मिलते। वह समझ गये थे कि मैं उनको समझने के लिये परेशान हूँ। इस रहस्य को जानने की जिज्ञासा मन को बुरी तरह झंझोड़ती थी। आखिर ये हैं कौन? कभी मन में अपार श्रद्धा उत्पन्न होती थी तो कभी गहरे रोमांच का अनुभव होता था। कथाओं में पढ़ा, जनश्रुतियों से सुना सच सा लगने लगता था कि शिव अपने भक्तों में प्रसन्न हो विभिन्न रूपों में अवतरित होते हैं। यदि ये मेरी तपस्या से प्रसन्न हो

अवतरित हुए हैं तो मौन क्यों हैं? मेरी परीक्षा ले रहे हैं ? जीवन में कुछ, असाधारण भी नहीं घट रहा था। अलबत्ता अब तो मन पूजा में भी एकाग्र नहीं हो पाता था।

इसी ऊहापोह में ६ माह व्यतीत हो गये। अगस्त माह में गंगा नदी में बाढ़ आयी थी। रसूलाबाद घाट डूब गया। पानी मन्दिर के चारों ओर हिलोरें मार रहा था। बढ़ते पानी की हलचल पूरे शहर में हलचल मचा देती है। कुछ लोगों के घर डूबते हैं तो बहुत से लोग डूबते घरों को देखते उमड़ आते हैं। वहीं खोमचे वाले चुरमुरा, मूँगफली और तरह-तरह की चीजें बेचने पहुँच जाते है। बाढ़ भी मनोरंजन का एक माध्यम बन जाती है। लोग बाढ़ देखने बहुत शौक से निकलते हैं। इस भीड़ के कारण मैं रात्रि ६ बजे के पहले मन्दिर नहीं जा पाता था। २६ अगस्त १९८१ को मैं रात ६.३० बजे मन्दिर पहुँचा। घाट निर्जन हो चुका था। मन्दिर की सीढ़ियाँ बाढ़ में डूब चुकी थीं। अतः मैं साहित्यकार संसद के प्रांगण से हो कर मन्दिर में पहुँचा। बाबा मेरी ओर देख रहे थे। उनकी आंखों में कुछ आत्मीय भाव थे। मैं बोला, ''देर के लिये माफी चाहता हूँ। दिन भर भीड़ रहती है अतः आना उचित नहीं समझता। फिर भी यदि आप आदेश करें तो मैं दिन में भोजन पहुँचा दिया करूँ। ''बाबा के मुख पर आये भावों को देखकर लगा कि आज शायद ये बोल सकते हैं। मैंने सविनय आग्रह किया, ''कुछ तो बोलिये बाबा! अब तो आप समझ गये होंगे कि मैं स्वार्थवश आपकी सेवा नहीं कर रहा। फिर मुझसे कैसा संकोच।''

''क्या जानना चाहते हो ....।' बाबा का स्वर गूँजा। उनकी आवाज के साथ ही मन्दिर में जलने वाला एक मात्र दिया तेल समाप्त हो जाने के कारण बुझ गया। धुप्प अंधेरा छा गया। कुछ क्षणों के लिये मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया मगर जल्दी ही संभला, ''यही कि आप कौन हैं ?''

''देख तो रहे हो कि मैं एक साधु हूँ।'' बाबा बोले। मैंने पूछा, ''क्या नाम है आपका ? कहाँ से आये हैं ?''

''क्या करोगे जानकर ?'' बाबा ने प्रश्न चिह्न लगा दिया।

"बस, जिज्ञासावश ही जानना चाहता हूँ।" मैंने सहज भाव से कहा।

"मैं शाहजहाँपुर से आया हूँ। वहाँ ८० एकड़ जमीन पर मेरा आश्रम था।" बाबा ने बोलना प्रारंभ किया, "मैंने फांसी पर चढ़ाये गये व्यक्ति को जीवित कर दिया था। निर्धनों को धन दिया। किनती सूनी गोंदे भर दीं .....।"

"फिर क्या हुआ बाबा ?" मैने आगे पूछा

"ब्रह्म की इच्छा।" बाबा बोले, "सब खतम हो गया... भक्त शत्रु बन गये और वहाँ से भागना पड़ा।" कह कर बाबा ज़ोर ज़ोर से रोने लगे।

चढ़ती गंगा के भयानक थपेड़े मन्दिर की दीवार से इस तरह टकरा रहे थे जैसे आज मन्दिर ढहा कर ही दम लेंगे। ताड़ के वृक्ष से लिपटा चमगादड़ रह कह कर चिचियाने लगता था। तिस पर धुप्प अंधेरे में बाबा का रुदन...मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि मैं अब क्या करूँ। उठा और चुपचाप घर की ओर चल दिया। बाबा के रोने ने मुझे भीतर तक हिला दिया..... यह तो सामान्य व्यक्ति की भांति रो रहे थे..... सारी कल्पनाएँ धूल धूसरित हो रही थीं। मगर सामान्य व्यक्ति ६ महीनों से मौन तो नहीं रह सकता। न लगातार जग सकता है। आशायें फिर बलवती होने लगीं। कहीं यह शिव का नाटक तो नहीं। नाटक में भी शिव रोयेंगे तो नहीं। मन स्पष्ट बोला, कोई भी सिद्ध पुरुष इस प्रकार नहीं रोयेगा। तो फिर ये हैं कौन ? मगर अब इस प्रश्न में वो रोमांच नहीं था।

इसके बाद ३-४ दिन तक मैं और बाबा एक दूसरे से नजरें चुराते रहे। फिर एक रात मैं देर में पहुंचा। लगभग ११ बजे रात का समय रहा होगा। मन्दिर में घुस कर पहले मैंने मोमबत्ती जलायी, इत्मिनान से बैठकर वार्ता प्रारंभ की, "बाबा सब कुछ कैसे समाप्त हो गया ?"

"ब्रह्म की इच्छा।" बाबा बोले।

चेष्टा करने पर भी मैं समझ नहीं पा रहा था मगर आज मैं निश्चय करके आया था कि बाबा के रहस्य को खोल कर ही जाऊँगा। बातों का सिलसिला जारी रखने के लिये मैंने सामान्य सा प्रश्न उछाला, "ये भूत-प्रेत क्या होते

हैं ?'' ''अकाल मृत्यु के द्वारा से भूत-प्रेत के लोक में प्रवेश होता है'' बाबा ने बताया।

''भूत-प्रेत आदमी के पास क्यों आते हैं ?'' मैंने पूछा।

''अपनी अतृप्त वासनाओं की पूर्ति हेतु उन्हें शरीर की आवश्यकता होती है। इसीलिये माध्यम की तलाश में वह आदमी के पास आते हैं।''

''इनसे संबंध रखने में आदमी का क्या फायदा ?'' मैंने स्वयं को ना समझ दर्शाते हुए पुनः प्रश्न किया।

बाबा मेरे अज्ञान पर मुस्कराते हुए बोले ''भूतप्रेत वो काम करते हैं जो आदमियों की सामर्थ्य के बाहर होता है। इनको तांत्रिक की शक्ति कहा जाता है। इनके माध्यम से चमत्कार किया जाता है। और बदले में इनकी वासना की पूर्ति हेतु शरीर रूपी माध्यम थोड़े समय के लिये इन्हें उपलब्ध कराया जाता है .....।'' बाबा जाने क्या-क्या कहते जा रहे थे कि अचानक बिजली सी चमकी और मेरे मन-मस्तिष्क की धुंध छट गयी और सब कुछ आइने की तरह साफ हो गया। अब मुस्कराने की बारी मेरी थी, ... ''पलड़ा बराबर का ही रहा बाबा। जब तक वह तुम्हारे बस में था तुमने इससे हर तरह का काम लिया। अब तुम उसके वश में हो तो वह तुम्हें रगड़ रहा है।'' बाबा सिटपिटा गये और नज़रें नीचे झुका लीं। दरअसल बाबा ने बरम साधा था और अब वह स्वयं उस बरम के वश में थे।

''मुझे नहीं पता था कि इतने दिनों से मैं बरम को खिला रहा हूँ।'' मैं शान्त स्वर में बोला, ''खैर मुझे एक प्रश्न का उत्तर चाहिये।''

बाबा ने प्रश्नवाचक दृष्टि से मेरी ओर देखा।

''मेरा भविष्य क्या है ? संसार या वैराग्य ?'' मैंने पूछा। बाबा ने सर झुका लिया। मैंने अपना प्रश्न पुनः दुहराया। बाबा सर झुकाये मौन बैठे रहे। मैं किंचित रोष से ललकारते हुए चिल्लाया, ''तुम्हें उस नमक का वास्ता जो तुम पिछले ६ माह से मेरा खा रहे हो। मुझे बताओ... मेरा भविष्य क्या है ? संसार या वैराग्य ?'' बाबा सर झुकाये झुकाये बुदबुदाये ''प्रभु की अनुमति नहीं है।''

मेरा ज्वर शान्त हो गया। प्रभु की अनुमति न होने पर सब कुछ जानते हुए भी बरम मुझे कुछ नहीं बता सकता अन्यथा वह महापाप का भागी होगा। ''ठीक है'' मैं बोला ''छल से धोखे से बनाया गया संबंध आज यहीं समाप्त होता है। अब तक का कहा-सुना, भूल-चूक लेनी-देनी सब यहीं समाप्त'' और उसे प्रणाम कर मैं चल दिया। सीढ़ियाँ उतरते हुए पलट कर मैंने देखा तो वह अपराध, शर्म, पश्चात्ताप, ग्लानि आदि मिले जुले भावों से मेरी ओर ताक रहा था।

■ ■ ■

वह औघड़ था

जगत में कुछ भी अचानक नहीं घटता। हर घटना किसी नियम से संचालित होती है। स्थूल, सूक्ष्म, अति सूक्ष्म, गहन सूक्ष्म, सूक्ष्मेतर आदि नियमों के जाल इस सृष्टि को संचालित कर रहे हैं। हिमालय के अन्दर जाने कहाँ से बहता चला आ रहा जल गंगोत्री का ही समझा जाता है हालांकि गंगा उस स्रोत से प्रकट हुई है, उत्पन्न नहीं हुई। इसी प्रकार सूक्ष्म नियमों की आंच में पकी घटना जब स्थूल जगत में घटती है तो उसे चमत्कार समझा जाता है। चमत्कार में आकर्षण है और तंत्र चमत्कारों से भरा है।

मुझे बचपन से ही चमत्कारिक घटनाओं और चमत्कार करने वालों के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। इस आकर्षण के चलते जाने कितनी बार जान जाते-जाते बची। १९६७ की बाढ़ में ममफोर्डगंज डूब गया था डॉ० रसाल का चबूतरा भी पानी में डूब गया था। दो मित्रों के साथ बढ़ी हुई गंगा में कूद गया। कितनों ने सिरफिरा कहा मगर कौन क्या कहता है इसकी तो मैंने कभी परवाह ही नहीं की। देर तक तैरने के बाद जब वापस किनारे आने को हुआ तो देखा कि मेरा पूरा परिवार बाढ़ देखने किनारे खड़ा था। फिर वापस बीच गंगा की ओर चल पड़ा। बाद में घर वापस आने पर माँ बोली--- 'इसी की तरह नालायक सरफिरे लड़के रहे होंगे जो इस बाढ़ में भी गंगा से खिलवाड़ कर रहे थे-- कैसे कहता कि वो मैं ही था। कैसे कहता कि प्रतिदिन सुबह-शाम भारद्वाज टैंक कह कर गंगा जाने वाले सुशील ने कभी भारद्वाज टैंक देखा ही नहीं। आज जानेंगे तो उन्हें तकलीफ़ होगी। मुझसे सभी को उलझन परेशानी और दुख ही तो मिला है। दिन-रात समय कुसमय गायब रहने वाले लड़के के बारे में कोई अच्छी बात कैसे सोचता। माँ-बाप की दृष्टि में नालायक, मामा-मौसियों की दृष्टि में फ्राड, चालबाज़,

सगे-संबंधियों की दृष्टि में बहुरुपिया समझे जाने वाले का असली रूप तो भोले शंकर ही जानें...... मैं तो मात्र इतना ही कह सकता हूँ कि मैं जो हूँ वह कभी समझा नहीं गया और जो समझा गया वह कभी था नहीं। सबसे लड़कर अपनों-सगों की मोह-ममता को चोट पहुँचा कर जो स्वतंत्रता मैंने भोगी क्या उसका दशांश भी अपने बच्चों को भोगने दे सकता हूँ ? यूँ अपनी जान दाँव पर लगाते देख सकता हूँ ?

बारंबार अपनी कृपा से मेरी जान की रक्षा करने वाले शिव ! बरसों से भटकते इस पथिक की व्यथित पुकार कब सुनोगे ? प्रयाग से केदारनाथ बद्रीनाथ कश्मीर से कन्याकुमारी तक..... मैं कहाँ नहीं गया ! काशी में तुमने बाबा तुलसी की आन रखी..... अपने भक्तों की पुकार पर विभिन्न रूपों में अवतरित होने वाले सदाशिव ! संबंधों की इस अराजक रुक्षता को अपनी कृपा से संवार दो। हृदय में तुम्हारा त्रिशूल लिये मैं मदान्ध गज सा बौड़ियाता फिर रहा हूँ..... न जगत का हो सका...... न तुम्हारा..... त्रिशंकु सा लटका हूँ राग और वैराग्य के बीच। एक खालीपन.... अधूरापन कही गहरे में मन को डसता रहता है। शरीर का भटकाव मन का भटकाव बन गया है। अब तो कृपा करो हे नीलेश्वर ! तंत्र की छोटी सी सिद्धि भी साधक को जीवन भर के लिये भौतिक जगत की अपार संपत्ति और यश प्रदान कर देती है। मैं तंत्र की ऊँचाइयों पर बैठकर भी स्वयं को कितना नीचा महसूस करता हूँ शिव ! इसे तुम और सिर्फ तुम ही समझ सकते हो। मेरी समस्त साधना, तपस्या और शक्तियाँ न्यौछावर हैं तुम पर।

मैं सिद्ध पुरुष नही। मंजिल की तलाश में निकला हुआ एक खोजी हूँ। गंतव्य के आस-पास हूँ..... मगर गंतव्य तक पहुँच पाऊंगा या नहीं..... भोले शंकर ही जानें। ऐसे में श्री रवीन्द्र कालिया का लिखने का अनुरोध..... गत डेढ़ वर्षों से उनकी दृष्टि मुझ पर थी...... पहले उन्होंने डॉ० बालकृष्ण मालवीय से कहा। फिर डॉ० प्रदीप भटनागर ने मुझसे अनुरोध किया। उसकी बात पर मैं चुप लगा गया......। अनुजवत् होने के नाते अधिक आग्रह करने का साहस उसमें नहीं था। फिर आये यश मालवीय..... सब

कुछ जानते समझते हुए भी मैं नासमझ अनजान बना रहा।...... क्या कहता...... कि जिसको अपनी ही खबर नहीं वह ज़माने को क्या खबर देगा। फिर आश्रम स्थल पर कालिया जी का आगमन हुआ। इस स्थल पर आने वाले को शिव ने कभी निराश नहीं किया, फिर मेरी क्या बिसात कि मैं कालिया जी को मना कर पाता। तो कालिया जी का मनोरथ सफल हुआ।

१९६७ की बात है। सुनाई पड़ा कि दारागंज में एक औधड़ दिखता है। दारागंज के निवासी उसके चमत्कारों को आज तक भूले न होंगे। वह जो बोलता सच हो जाता था मगर परेशानी यह थी कि वह बोलता बहुत कम था। आप लाख पूछिये वह उत्तर नहीं देता था। बार-बार पूछने पर झल्लाकर गाली देना शुरू कर देता था। कभी कभी तो मार भी बैठता था। मार खाने वाले मार खाने में भी अपना सौभाग्य समझते थे। उन्हें विश्वास था कि मार में भी उस औधड़ का आशीर्वाद है जो उनका मनोरथ सफल कर देगी। जब कभी वह औधड़ नज़र आता लोग उसे घेर लेते। हलवाई अपनी मिठाई पेश करते, दुकानदार अपनी वस्तुएँ देते, खोमचेवाले अपना सामान रखते, मगर वह दी हुई चीजें छूता भी न था। अधिकांशतः सब कुछ छोड़कर चल देता...... कभी मन होता तो खा लेता। उसके खाने पर लोग यूँ खुश होते जैसे भगवान ने भोग लगाया हो।

उन दिनों मैं नये कटरे में 'डी पार्क' के पास रहता था। मोहन-धाम में मेरा ननिहाल है। वो पूरा का पूरा मोहल्ला मुझे अपने घर जैसा लगता है। सभी से गहरे अपनत्व और आत्मीय भाव से मिलता था। औघड़ के बारे में सुनकर उसे देखने-जानने की उत्कंठा प्रबल हुई। नये कटरे से दारागंज दूर था फिर भी कई चक्कर लगाये। कभी सुबह जाता कभी दोपहर और कभी शाम मगर वह मिलता ही नहीं था। कभी मेरे पहुँचने के थोड़ी देर पहले ही गायब हो जाता...... कभी पता चलता कि कई दिन से प्रकट ही नहीं हुआ। दारागंज श्मशान घाट पर एक झोपड़ी उसी की है। मुझे तो वह कभी उस झोपड़ी में भी न दिखा।

कई महीने बीत गये थे कि एक दिन दारागंज में रहने वाले एक परिचित दोपहर ३ बजे मेरे पास उसकी उपस्थिति की सूचना ले कर आये। मैं अपने मित्र कुणाल मुखर्जी के साथ तुरन्त निकल पड़ा। संयोग था कि उस दिन मेरे पहुँचने तक वह वहीं था। बड़े-बड़े उलझे उलझे सर के बाल जैसे महीनों से तेल कंघी न की गयी हो। बढ़ी हुई दाढ़ी, लाल-लाल आंखें और वस्त्रहीन शरीर। एक क्षण को लगा कि मैं औघड़ नहीं किसी पागल या अर्धविक्षिप्त को देख रहा हूँ..... मगर तुरन्त विचार आया कि विक्षिप्त और सिद्ध के बाह्य लक्षण लगभग समान ही होते हैं..... किन्तु इसके शरीर से उठती दुर्गन्ध जैसे महीनों से न नहाया हो। यह दुर्गन्ध तो सिद्ध का लक्षण नहीं..... ये सन्त नहीं औघड़ है..... पशु-भाव की साधना का चरमोत्कर्ष गन्ध-सुगन्ध से परे, विष्ठा-मीठा से तटस्थ, सामाजिक आदर्शों और नैतिकता के मानदंडों से परे, उदान्त उन्मत्त श्मशानी शक्तियों का स्वामी होता है औघड़। तो ये औघड़ हैं या विक्षिप्त ? मैं चुपचाप खड़ा आत्मलीन हो गया। साथ आये मित्र कुणाल ने मुझे झकझोरा, "क्या सोच रहे हो ? उससे कुछ बात तो करो ?" मैं आगे बढ़ कर उसके पास गया, 'महाराज ! 'प्रणाम !' मगर उसने पलटकर भी मुझे नहीं देखा। कुणाल ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा और भीड़ से बाहर ले गया 'वह पागल है, भैय्या ! चलो अब घर चलें।' उसके स्वर में व्यर्थ ही समय नष्ट होने की खिजलाहट थी। मैंने कहा, 'नहीं यार' अगर ये पागल होता तो क्या इतने लोग इसे घेरे रहते....... मुझे लगता है कि यह सिद्ध औघड़ है। आओ चाय पियें। कह कर मैं पास की चाय की दुकान पर पहुँचा। चाय पीते हुए मैं कुणाल से बोला, 'तुम घर जाओ मैं बाद में आऊँगा।'

'क्यों ? तुम यहाँ क्या करोगे ?' कुणाल ने पूछा। 'मैं इसके इर्द-गिर्द रहूँगा' मैंने कहा। 'कब तक ?' कुणाल ने पूछा। जब तक यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि ये है क्या ?" मैंने कहा।

अब कुणाल के सब्र का प्याला भर गया। उसने क्रोध में कहा 'क्या रात तक यहीं बैठोगे ?' मैं शान्त स्वर में बोला, 'यदि आवश्यकता हुई तो

रात भर यही रहूंगा। महीनों बाद तो यह मिला है। आज इसका रहस्य जान कर ही लौटूंगा। तुम घर चले जाओ।' मेरे मित्र कुणाल को इन सब बातों में कोई रुचि नहीं थी। वो मुझे बहुत चाहता था...... कहीं मैं किसी मुसीबत में न फंस जाऊँ...... इसलिये वह मेरे साथ आया था और मुझे सही सलामत वापस अपने साथ ले जाना चाहता था। इसीलिये अकेले उसके वापस जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

सांझ होने की थी। औघड़ उठा और बांध की ओर चल दिया। कुछ लोग उसके पीछे थे। मैं भी उठा और उस पर दृष्टि रखते हुए थोड़ी दूर पर उसके पीछे पीछे चल दिया। मेरे साथ मेरा मित्र कुणाल भी गुस्से में मुँह फुलाये फुलाये चल रहा था। अन्यमनस्क सा वह औघड़ आहिस्ता आहिस्ता बांध की ओर जा रहा था। उसका पीछा करती भीड़ घटती जा रही थी। आज उसने किसी के प्रश्न का उत्तर नही दिया था। निराश हो कर वापस लौटने वाले लोग बड़बड़ा रहे थे-- दिन भर बरबाद हुआ और कुछ नहीं मिला। कुणाल भी बड़बड़ाया--- 'वो तो पागल है ही तुम भी कम बड़े पागल नहीं हो।' मैं चुपचाप आगे बढ़ता रहा। बाँध पर पहुँच कर एक पानवाले की दुकान पर वह रुका। उसने खैनी ली और चूने के साथ हथेली पर मलने लगा। मलते मलते उसने गहरी दृष्टि से अपने पीछे आने वालों को देखा। थोड़ी दूर पर ठिठका खड़ा मैं भी उसे देख रहा था। उसकी जलती निगाहों से निगाह मिलते ही मैंने नज़र हटा ली जैसे मेरा उससे कोई सरोकार ही न हो। खैनी मल कर उसने दाँतों तले दबायी और गंगा की ओर चल दिया। लोग अब उससे निराश हो चुके थे। फिर भी ३-४ लोग उसके पीछे चल रहे थे। रह कह कर उससे प्रश्न करते रहते। वह उनके प्रश्नों का कोई उत्तर दिये बिना चलता रहा। सांझ ढल चुकी थी। झुटपुटा हो रहा था।

अचानक औघड़ दौड़ पड़ा। मैं भी तेज़ी से उसके पीछे दौड़ा। मेरे पीछे कुणाल था। गंगा की ओर तेजी से दौड़ते औघड़ का पीछा करने की सामर्थ्य अब किसी में न थी। लगभग पौन किलोमीटर व्यक्ति का दौड़ पाना संभव न था। मैं और कुणाल अच्छे धावक थे। अतः हमें कोई समस्या न थी।

गंगा के पास पहुँच कर वह ठहरा और पीछे मुड़ कर हमें देखने लगा। अब हम उसके पास पहुँच गये। वह हमें घूर रहा था-- 'भाग जाओ' उसने डांट कर कहा।

मैने मुस्कराते हुए उसकी आंखों में आंखें डालकर कहा, "भाग जाने के लिये नहीं आया हूँ बाबा ! मुझे ज्ञान दो।' वह चुपचाप हमें घूरता रहा। मैंने पुनः निवेदन किया, 'मुझे भौतिक जगत की कोई चीज नहीं चाहिये। मैं तो ज्ञान-पिपासु हूँ। आपसे कुछ जानना चाहता हूँ।"

'भाग जाओ' पुनः डाँट कर उसने पास पड़ा पत्थर मुझे मारने को उठा लिया। मैं भयभीत हुए बिना उसकी आंखों में आंखें डाले मुस्कराता रहा। वह विचलित हो गया और पत्थर फेंक कर पलटकर दूर श्मशान में जलती चिताओं की ओर चल दिया। 'इसने नाटक करके सबको भगा दिया है और अब हमसे भी पिंड छुड़ाना चाहता है, कुणाल ! आज इसका पीछा नहीं छोड़ेंगे।' कुणाल का गुस्सा दूर हो चुका था। उसे महसूस हो गया था कि वह पागल नही है, बोला, 'इसने तुम्हें पत्थर क्यों नहीं मारा ? लोगों को तो यह पत्थर मारकर भगा देता था। तुम्हें क्यों नहीं मारा ?' मै क्या जवाब देता। आकर्षण के एक प्रयोग ने उस निर्गम, निस्पृह औघड़ के मन में भी मेरे लिये स्नेह का पौधा रोप दिया था। अब औघड़ मेरा अनिष्ट नही करेगा। औघड़ निर्दयता से किसी की भी जान ले सकता है... मार सकता है और अपनी नृशंसता पर अट्टहास लगा सकता है। सिद्धि पाने की यात्रा में मानवीय संवेदनाएँ समाप्त हो जाती हैं। माया, ममता, करुणा स्नेह सब कुछ चुक जाता है। इन भावों के होते श्मशानी शक्ति कृपालु भी तो नहीं होती। अब तक दो निष्कर्ष निकल चुके थे-- यह सिद्ध है, मेरा अनिष्ट नहीं करेगा। रह कह कर वह पलटता और क्रोध व्यक्त करते हुए चिल्लाता 'भाग जाओ वरना भस्म कर दूँगा।' मैं हाथ जोड़कर विनीत भाव से मुस्कराते हुए कहता, 'बाबा ! कृपा करो।' यह क्रम कई बार चला। वो अपनी झोपड़ी में गया। वहाँ से जमीन खोद कर कुछ निकाला और गंगा की ओर चल दिया। अब हम लगभग उसके साथ ही थे। हमारी उपस्थिति पर आक्रोश समाप्त हो गया

था। कोप तटस्थता में बदल चुका था। चिताओं के बीच से वह गंगा की ओर बढ़ रहा था। एक बुझी हुई चिता के पास वह रुका। आगे बढ़कर बुझी हुई चिता की राख उसने हाथ में उठायी। कुछ मंत्र पढ़ कर फूँका और फिर राख वहीं फेंक दी। उसका आचरण कुणाल के लिये विस्मयकारी था, 'बुझी हुई चिता की राख उसने उठायी फिर वहीं फेंक दी, क्यों ?' कुणाल ने फुसफुसाते हुए पूछा।

'उसने अभिमंत्रित किया था।' मैंने कहा।

औघड़ अब गंगा में प्रवेश कर रहा था। रात अंधेरी थी। ज्यादा दूर तक दिखायी नहीं दे रहा था। मैं पूरी तरह से अपना ध्यान औघड़ पर एकाग्र किये था। कुणाल उसी बुझी हुई चिता की ओर देख रहा था। अचानक कुणाल जोर से चिल्लाया, "भैय्या ! देखो !" विस्मय से निकली हुई उसकी चीख पर मैंने देखा बुझी हुई चिता से आग के जलते हुए अंगारे उछलने लगे थे। अंगारे बढ़ते जा रहे थे और हवा में उड़ कर ऊंचाई तक उछल रहे थे। ठीक वैसे ही जैसे दीपावली में लोग अनार छुड़ाते हैं। हम हतप्रभ वह दृश्य देख रहे थे। देखते देखते अंगारों ने जीभ निकाले हुए पिशाच का आकार ले लिया। यह दृश्य इतना भयावह था कि सामान्य व्यक्ति के हृदय की धड़कन रुक सकती थी। मगर हम विस्मित थे। भयभीत नहीं। फिर दो मिनट बाद सब कुछ शान्त हो गया। अंगारे राख में बदल गये। सब कुछ पूर्ववत हो गया। मुझे होश आया तो पलट कर देखा औघड़ गायब हो चुका था। 'ओफ्होह !' अफसोस से मैं चीखा।

'क्या हुआ ?' कुणाल ने घबरा कर पूछा 'ये सब लीला उसने हमारा ध्यान बंटाने के लिये की थी, मैंने कहा, "देखो ! वह गायब हो गया।" हम पलट गर उसकी झोपड़ी में गये... इधर-उधर देखा मगर वह कहीं नहीं मिला।

लौटते समय कुणाल जोश में था; 'भैय्या हम लोग फिर आयेंगे। इस साले की ऐसी तैसी कर देंगे। अगली बार इसे निकलने नहीं देंगे चाहे जैसा

नाटक करे।' मैं चुपचाप रहा। हम वापस लौटे इस निश्चय के साथ कि दोबारा फिर आयेंगे और औघड़ का रहस्य जानेंगे।

८-१० दिन बाद पूर्णमासी थी। कुणाल से बात हुई। हम दोनों ने तय किया कि आज की रात औघड़ का रहस्य जान कर ही घर लौटेंगे। हम लोग सांय ६ बजे घर से निकले। घाट पर उसकी झोपड़ी से थोड़ी दूर सायकिल रेत में गिरा दी। चिताओं के चारों तरफ उसे देखा... कहीं नज़र नहीं आया। गंगा-किनारे दूर-दूर तक उसे खोजा, फिर झोपड़ी में देखा... वह कहीं नहीं था। हम झोपड़ी के पीछे बालू में बैठ गये। झोपड़ी की दीवार में एक छेद कर दिया ताकि झोपड़ी में होने वाली किसी भी घटना को देख सकें। आज वह जरूर आयेगा श्मशान साधकों, सिद्धों के लिये पूर्णमासी और अमावस की रात का विशेष महत्व होता है। मुझे पूर्ण विश्वास था कि आज की रात खाली नहीं जायेगी। घर पर एक मित्र की बहन की शादी का बहाना बनाकर निकले थे। इसलिये हम निश्चिंत थे कि रात अपनी है। आपस में बातें करते करते १० बज गये। कुणाल निराश होने लगा। धीरे धीरे ११ बज गये। अब मुझे भी आशंका होने लगी कि औघड़ के पास कई स्थल हो सकते हैं। संभवतः आज वह किसी अन्य स्थल पर क्रियाशील हो। रात के १२ बज गये। अब हम निराश हो गये। श्मशानवासी रात्रि १२ बजे जरूर पूजन करता है। यदि अब भी वह नहीं आया तो निश्चय ही वह कहीं और कार्यरत होगा। वापस आने के लिये हम उठे ही थे कि दूर से तेज़ी से आता हुआ वह औघड़ दिखा। हम आड़ में छिप गये। समय बहुत हो चुका था। इसलिये वह बहुत जल्दी में था। झोपड़ी में घुसा। हाथों से जल्दी-जल्दी जमीन खोदकर उसने कुछ निकाला। हम लोगों ने गौर किया तो देखा कि वह मनुष्य की खोपड़ी थी। उसे ले कर तेज़ी से वह गंगा की ओर भागा। थोड़ी दूर पर ही गंगा का किनारा था। हम स्तब्ध उसकी फुर्ती देखते रहे। चाँदनी रात थी। सब कुछ स्पष्ट दिखायी दे रहा था। गंगा की ओर मुँह करके खोपड़ी वाला हाथ उठा कर वह जोर से आदेशात्मक भाव में दहाड़ा, 'थम जा।'

ऐसा लगा जैसे गंगा की बीच धारा में बहती हुई कोई चीज रुक गयी। फिर हाथ से इशारा कर उसे बुलाते हुए वह चिल्लाया, 'आ... आ... आ...' आश्चर्य कि वह चीज़ धारा को काटती हुई किनारे आने लगी। जब वह किनारे आ गयी तो औघड़ जल में उतरा। घुटने भर पानी में जा कर उसे उठा लाया। टिकटी में बंधी वह लाश किसी लड़की की थी, जो अविवाहित होने के कारण गंगा में प्रवाहित की गयी होगी। औघड़ बेसब्री से उसकी रस्सियाँ खोल रहा था। लाश को उठा कर वह झोपड़ी में ले आया। वस्त्रहीन लाश को उसने झोपड़ी में लिटा दिया। सर से पेट तक उसका स्पर्श करते हुए मंत्र पढ़ पढ़ कर उसे फूँकता रहा फिर देखते देखते वह उस पर बैठ गया... 'हा काल भैरव... हा काल भैरव... तेरा प्रसाद' जोरों से अट्टहास कर वह लड़की के दोनों वक्षों को अपने दोनों हाथों से नोच नोच कर खाने लगा। बीच-बीच में उसकी छाती से मुँह सटा कर उसकी देह में बचे हुए रक्त को पी रहा था। औघड़ पूरी तरह मदमत्त था। खुशी का आवेग संभाले नहीं संभलता था और वह रह रह कर 'हा काल भैरव... हा काल भैरव' चिल्ला कर आह्लादित हो कर उसके मांस को नोच नोच कर खा रहा था।

हम अवाक यह घटना देख रहे थे। सोचने समझने की शक्ति समाप्त हो चुकी थी। आंखें देख रही थीं मगर दिमाग समझ नहीं पा रहा था। अचानक पीछे मुड़ कर हम लोगों की तरफ देखते हुए वह चिल्लाया, "आ लल्ला, आ ! तू भी प्रसाद पा।" इसका मतलब उसे हमारी उपस्थिति की पूर्ण जानकारी थी। हम तो समझ रहे थे कि वह हमारी उपस्थिति से अवगत नहीं है मगर वह पूर्णतया भिज्ञ था। भयंकर अट्टहास कर वह बोला 'हा...हा...हा...हा...हा...हा...आ लल्ला ! देख मसान का प्रसाद ... आ जा ... आ जा... !

अब हमें उठना ही था। आहिस्ता आहिस्ता झिझकते हुए मैं झोपड़ी के दरवाजे की ओर बढ़ा। पीछे कुणाल था। वह दरवाजे पर ठिठक कर खड़ा हो गया। मस्त मदमत्त औघड़ चिल्लाया, 'काल भैरव तुझ पर प्रसन्न हैं लल्ला! ले प्रसाद खा ...।' कह कर उसने लाश से मांस नोंच कर मेरी ओर बढ़ाया।

जुगुप्सा से मेरा मन घिना रहा था। मगर आवेग में भरे उन्मत्त औघड़ की आज्ञा न मानने का परिणाम मैं जानता था। मैंने बात बदलने की चेष्टा की, "मैं तो ज्ञान लेने आया था बाबा।"

अट्टहास कर उठा बाबा ! श्मशान में शव पर बैठ कर मांस खाने वाले औघड़ का अट्टहास ! मैंने कुणाल की ओर देखा, भयवश उसका मुख सफेद हो गया था। अट्टहास थमने पर मुदित भाव से औघड़ बोला, 'ज्ञान तो तुझे साक्षात् शिव देंगे.... ले काल भैरव का प्रसाद... कल्याण होगा।' मैंने झिझकते हुए हाथ बढ़ाया। आश्चर्य... मेरे हाथ में गरम गरम हलवा था। हम लोग पलटे और वापस चल दिये।

■ ■ ■

वह श्मशान-डाकिनी

श्मशान के अपने कायदे कानून होते हैं। जिस तरह मनुष्य समाज के अपने आदर्श और नैतिकता के मापदंड होते हैं उसी प्रकार श्मशानी शक्तियाँ भी अपने मानदंडों की परिधि में रहती हैं। जिस तरह शहर में कुछ क्षेत्रों में सामान्य व्यक्ति का प्रवेश निषेध लिखा रहता है उसी तरह श्मशान में भी कुछ स्थलों में प्रवेश वर्जित रहता है। शहर की सड़कों पर चलने वाला यदि बायें चलने के नियम को नहीं जानता और अपना वाहन दायें बायें चलायेगा तो दुर्घटना निश्चित होगी, उसी प्रकार सामान्य व्यक्ति श्मशानी आचार-संहिता को जाने बगैर यदि श्मशान में घूमेगा तो दुर्घटना निश्चित होगी। अक्सर लोग जोश में श्मशान घूमने आते हैं। उन्हें इसमें बहादुरी प्रतीत होती है कि मैं रात में श्मशान गया था.... अरे क्यों गये थे?.... वहाँ क्या किया? मूल प्रश्न प्रयोजन और प्रयोजन की सिद्धि का होता है। वहाँ जाने मात्र से आपका पौरुष आदरणीय नहीं हो जाता। यूँ ही श्मशान जाने वाला, श्मशानी नियमों से, शक्तियों से जाने-अनजाने खिलवाड़ करने वाला अक्सर किसी मुसीबत में फंस जाता है। श्मशानी साधक की एकाग्रता, इच्छाशक्ति या दृढ़ता में जरा भी कमजोरी हुई तो वो भी बड़ी मुश्किल में फंस जाते हैं और इसके परिणाम बड़े भयानक होते हैं। जगत में भूल-सुधार का मौका मिलता है। बच्चा गिर-गिर कर चलना सीखता है। बार-बार मौके मिलते हैं। फिर क्षमा, दया, करुणा, स्नेह जैसे आत्मीय कोमल भाव भी हैं। बड़े लोग छोटों की गलतियाँ क्षमा कर देते हैं। श्मशान में क्षमा, ममता, करुणा का कोई स्थान नहीं है। जरा सी असावधानी गहरे संकट में फंसा देती है। विक्षिप्त अर्धविक्षिप्त हो जाना तो सामान्य सी बात है। श्मशानी साधना तलवार की धार पर चलने जैसी है। चलना प्रारंभ करने के बाद रुकने या हटने की कोई गुंजाइश नहीं है। बीच में छोड़ कर आप भाग नहीं सकते। इस पार या उस पार। या

तो आप वशीभूत कर लेंगे या वशीभूत हो जायेंगे। या तो आप मसान पर विजय पाकर उसे नचायेंगे या फिर वह आपको नचायेगा। जगत में सबसे बड़ी सजा मृत्यु है। श्मशान में मृत्य के पश्चात सैकड़ों वर्ष भुवनलोक में काटने की सजा मिल जाना साधारण बात है। यहाँ पलों के मुहूर्त का सही उपयोग कर बहुत कुछ पाया जा सकता है और चूक जाने पर बहुत कुछ खोया भी जा सकता है।

लोग श्मशानी साधक को हेय दृष्टि से देखते हैं। तन्त्र को अच्छा नहीं मानते और तांत्रिक को अच्छा आदमी नहीं समझते। अच्छाई-बुराई, पाप-पुण्य, नैतिकता-अनैतिकता की परिभाषायें युग काल, परिस्थितियो के अनुसार बदलती रहती है। एक ही कर्म कभी पुण्य तो कभी पाप। जैसे भूख से बेहाल व्यक्ति को आपने भरपेट भोजन कराया। वह तृप्त हो गया और जाकर अपने काम में लग गया तो यह पुण्य हुआ। वही भोजन से तृप्त व्यक्ति उठा और क्रोधवश उसने किसी की हत्या कर दी तो आप पाप के भागीदार हुए। हम बार-बार समाज का भला करने का कर्म करते हैं मगर अनजाने ही समाज का अपकार हो जाता है। बारंबर अच्छी नीयत से भला चाहते हुए किसी की भलाई करते हैं मगर उस तक पहुँचते-पहॅुचते वह बुरा हो जाता है और हम प्रिय के कोप-भाजक बनते हैं। जीवन निरन्तर विरोधी स्वरों के संघर्ष में बहता है। ठीक-ठीक समझ पाना बड़ा मुश्किल है। अपने लिये कमाते रहें और हमारी कमाई दूसरे करते रहें। हम दूसरों का खाते रहें। जो हमारे पेट में गया वह मेरा है? या जो मैंने कमाया और दूसरों के पेट में गया वह मेरा है? क्या अपना है? क्या पराया? क्या बुरा है? क्या भला है? समझ पाना बड़ा मुश्किल है।

ईसा ने जीवन भर दूसरों का भला किया और उसे सलीब पर चढ़ा दिया गया। राम जीवन भर मर्यादा निभाते रहे। बचपन में विश्वामित्र के यज्ञ अनुष्ठानों की रक्षार्थ राक्षसों से युद्ध करते बीता। विवाहोपरान्त १४ वर्ष का वनवास। वनवास व्यतीत कर अयोध्या के राजा बने। राम के गिने चुने दिन ही सुख से बीते होंगे..... फिर सीता का परित्याग! एकांकी राम, राजा

राम..... भगवान राम किस सुख का भोग कर सके होंगे? गर्भवती पत्नी के परित्याग का दंश क्या राम को निशा में चैन से सोने देता होगा?..... फिर सीता से मिलन.... दूर से.... सामने-सामने सीता का धरती में समा जाना.....। अग्नि परीक्षा के अविश्वास को सहन कर जाने वाली सीता राम के परित्याग को न सह पायी। १४ वर्षों तक स्वेच्छा से राम का अनुगमन कर जंगल-जंगल भटकने वाली सीता परित्याग न क्षमा कर सकी। शर्म, लज्जा, अपमान, ग्लानि और तिरस्कार से भरी सीता ने पुनर्मिलन से कही अच्छा समझा चिर वियोग और धरती की जायी जानकी राम के सामने धरती में समा गयी। क्या बीती होगी राम के मन पर.... वर्षों तक राम अयोध्या पर राज किये.... एकाकीपन डसता रहा.... ग्लानि बोध सालता रहा.... फिर भ्राता लक्ष्मण की अकाल मृत्यु ने राम को भीतर तक दहला दिया। पहले पत्नी-वियोग... फिर सतयुग में अकाल मृत्यु.... कितनी पीड़ा कितनी वेदना कितना दंश सहते राम.... थक हार कर सरयू की गोद में जल-समाधि ली। राम की पूजा करने वाला कौन राम जैसा जीवन स्वेच्छा से वरण कर सकेगा? ईसा को मानने वाले कितने ईसा की तरह सलीब पर चढ़ सकेंगे और वो भी इस भाव के साथ कि प्रभु इन्हें क्षमा करना, ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। प्रभु के प्रति समर्पण.... पूर्ण समर्पण इसके अलावा कोई विकल्प नहीं है। अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य उचित-अनुचित सब तुम जानो हे विश्वनाथ! हम तो कर्म; मात्र कर्म करते हैं। कर्म के इन बीजों को उपयुक्त जमीन और अनुकूल मौसम देकर जैसा चाहो वैसा सजा लो गंगाधर ! सृष्टि के कण-कण में तुम समाये हो। मेरे हर स्पन्दन के प्रेरक तुम हो, कर्ता भी तुम्ही हो, फल भी तुम्ही हो। हमें धर्म-अधर्म, नैतिक-अनैतिक, पाप-पुण्य की भूल-भुलैया में न फंसाओ सदाशिव! दिन-रात चातक सी टेर लगाने वाले इस मूढ़ पर कब कृपा, बरसाओगे महेश्वर!

कुछ वर्ष पहले की बात है। एक दिन मेरे पास आने वाला युवक अजय गंभीर मुद्रा में मेरे पास आया। मेरे पूंछने पर उसने बताया कि उसके चचेरे भाई विमल को विगत दो माह से बुखार है। कोई भी दवाई फ़ायदा नहीं कर रही। एलोपैथी, होम्योपैथी, वैद्यकी सब तरह के इलाज कर डाले मगर

बुखार उतरा नहीं। १०० से १०२ के बीच में रहता है। निरन्तर बुखार रहने के कारण बहुत कमज़ोर हो गया है। लोग कहते हैं कि ऊपरी फेर है। पंडितों से पूजा-पाठ भी करवाया गया मगर कोई फ़ायदा नहीं हुआ। उसकी इच्छा थी कि मैं चलकर देख लूँ। मगर कहने का साहस नही संजो पा रहा था। जानता था कि मैं झाड़-फूँक, ओझाई बिलकुल पसन्द नहीं करता। दो-तीन दिन बाद पुनः उसने भाई की बीमारी की चर्चा की। मुझे लगा कि मुझे जाना चाहिये... शिव कब कौन-सी प्रेरणा दे दें.... कौन जान सकता है। अस्तु, शाम ७ बजे मैं उसके साथ चल दिया। उनके घर में घुसते ही मुझे अजीब सा महसूस होने लगा। घर... घर जैसा न लगा। माँ-बाप के मुख पर गहरे दुख की.... असहायता की छाप थी। समूचा वातावरण रुग्ण और बोझिल था। २०-२१ वर्ष का युवक विमल बिस्तर पर पड़ा था। बीमारी ने वाकई उसे बेहद कमज़ोर कर दिया था। घरवाले बताने लगे कि उसका शरीर बहुत स्वस्थ था। वह अच्छा तैराक था। विश्वविद्यालय में एम०ए० फाइनल का छात्र विमल पढ़ाई में बहुत अच्छा था। हँसमुख, मिलनसार और आवश्यकता पड़ने पर सबकी मदद करने वाला था। परोपकार सेवा-भावना उसमें कूट-कूट कर भरी थी। उसकी माँ कह रही थी, 'भैय्या। हमने अपने जाने कभी किसी का बुरा नहीं किया। अपना नुकसान करके भी लोगों का भला किया, मगर इसकी हालत देखकर शराफत और परोपकार से भरोसा उठने लगा है। जाने किसने क्या कर दिया... हमारा फूल सा इकलौता बच्चा... अगर इसे कुछ हो गया तो हम भी ज़हर खाकर मर जायेंगे....।' कहते-कहते उसकी माँ फूट-फूट कर रो पड़ी। ऐसा दृश्य देखकर पाषाण भी पिघल जायेगा, फिर मैं तो मानवीय संवेदनों से भरा एक सामान्य व्यक्ति ही हूँ।

अब मैंने बीमार युवक पर गौर किया। लम्बी अस्वस्थता के कारण शरीर क्षीण हो चुका था मगर उसकी आंखें चंचल थी। शरीर मृत हो रहा है और आंखों में शोखी और चंचलता.... हृदय में अवसाद का कोई लक्षण नहीं.... इसका मतलब चेतना के तल पर यह पूर्ण स्वस्थ है। मानसिक चेतना का शारीरिक अस्वस्थता से कोई सरोकार नहीं। ऐसा क्यों? शरीर रूपी घोड़े

का सवार तो मन ही है। सवार की इच्छानुसार ही घोड़ा चलता है। स्वस्थ मन शरीर को स्वस्थ रखने की सामर्थ्य रखता है। मगर विमल के साथ कुछ असाधारण घट रहा था। शरीर और मन जैसे पृथक जी रहे हों। डॉक्टर वैद्य और मनोवैज्ञानिक भी आसानी से इस गुत्थी को नहीं समझ सकते कि मन और शरीर के सेतु का यूँ टूट जाना कैसे संभव है? मुझे गौर से देखता पा विमल ने अपनी नज़रें हटा लीं। मैं चौक गया। उसका नज़रें हटाना किसी असामान्यता का प्रमाण था। सामान्य बीमार नजरें क्यों हटायेगा? मैंने उसका हाथ पकड़ा। नब्ज देखी। सामान्य थी। उसकी मॉ कहती रही, 'हर चीज ठीक है, भैय्या! डॉक्टर हर परीक्षण कर चुके और कहते हैं कि इसे कोई बीमारी नहीं....।' लड़के ने मेरे हाथ से अपना हाथ नही हटाया। उसके स्पर्श मे कुछ भी असामान्य न था। थोड़ी देर तक मै बैठा रहा। हर चीज को समझने की कोशिश करता रहा। उसके मां-बाप अपनी व्यथा कहते रहे.... कैसी कैसी परिस्थिति में फंसा देते हो शिव शंकर! ऊपर से दृढ़, कठोर और संतुलित दिखने वाले का हृदय कितना भावुक है इसे तो तुम्ही जानते हो भोले शंकर!

लगभग १ घंटे तक मैं वहाँ बैठा रहा। बीमार विमल ने जबसे नज़रें हटायी थीं तभी से आंखें बन्द कर ली थीं और मेरे उठने तक उसकी आंखें बन्द थीं जैसे थक कर पलकें मूंद लीं हों। मैंने जो उसकी ऑखों में देखा कहीं वह मेरा भ्रम तो नहीं था। मुझे स्वयं पर शक होने लगा। खैर मैं वापस आने के लिये उठा। मेरे साथ अजय भी उठ खड़ा हुआ। हम लोग घर के बाहर आये। चलने को ही थे कि उसी समय विमल का कोई मित्र उससे मिलने के लिये आया और उसने अजय से नमस्ते की। अजय ने मेरा परिचय उससे कराया। ये विमल का अभिन्न मित्र आलोक है और ये भाई साहब ! आलोक की आँखों में चमक आयी, 'तांत्रिक भाई साहब !' अजय ने सहमति में सर हिलाया। आलोक उत्साहित होकर मुझसे बोला, 'आपसे मिलने की बहुत इच्छा थी। हम लोग भी तंत्र-मंत्र में बहुत रुचि रखते हैं। 'हम लोग कौन!' मैंने पूछा 'मैं और विमल।' आलोक ने उत्तर दिया। 'आना कभी,' कहकर मैं चलने को उद्यत हुआ। आलोक ने बात पकड़ते हुए पुछा, 'कल

आऊं?' 'ठीक है।' मैंने अनमने भाव से कह दिया 'कै बजे?' आलोक तो मिलने के लिये बहुत व्याकुल लगा।

'कल शाम ६ बजे आना।' मैंने यूँ ही कह दिया। मेरे मन मस्तिष्क में तो विमल की गुत्थी उलझी थी। दूसरे दिन ठीक ६ बजे आलोक आया। मैं अनमने भाव से उससे मिला। उसे बैठाला। इधर-उधर की बातें होती रहीं। मैं उसकी बातों में विशेष रुचि नहीं ले रहा था। स्वयं को विशिष्ट दर्शाने की चाहत में उसके मुँह से निकला, 'अरे, हम लोगों ने तो श्मशान की खाक भी छानी मगर कहीं कुछ न मिला।'

'कौन से श्मशान?' मैंने पूछा। 'रसूलाबाद।' उसने उत्तर दिया। 'क्या विमल भी तुम्हारे साथ जाता था? मैंने पूछा। 'हाँ! हम दोनों साथ ही रहते थे।' उसने बताया 'श्मशान में तुम लोग क्या करते थे?' मैंने प्रश्न किया। 'घूमते थे' उसने गर्व से कहा, 'और साधना किया करते थे।' 'कैसे करते थे साधना?' मैंने प्रश्न किया। 'जली हुई चिता पर खड़े होकर मंत्र जाप किया करते थे।' आलोक ने बताया। 'इससे क्या होता है?' मैंने पूछा। 'मसान-सिद्ध होता है।' उसने बताया। मुझे उसकी मूर्खता पर विस्मय हुआ। बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने प्रश्न किया–'क्या तुम लोग एक ही चिता पर खड़े होते थे?' 'नहीं अलग-अलग' आलोक का उत्तर था। मुझे लग रहा था कि बीमारी की जड़ें श्मशान में ही हैं।

'क्या तुमने कभी कोई असामान्य घटना देखी?' मैंने पूछा। '"नहीं तो मगर... मगर' हकलाते हुए वह चुप हो गया। 'बताओ.. बताओ, जो भी बात हो बिना हिचक बताओ....।' मैंने उसे उत्साहित किया। 'पता नहीं बात कुछ है भी या कोरी कल्पना ही है।' आलोक ने कहना प्रारंभ किया, 'एक दिन हम लोग श्मशान से ६ बजे रात लौट रहे थे। विमल ने बताया कि उस दिन एक सुन्दरी उसके पास आयी और उससे खाना माँगने लगी। वो बहुत भूखी थी।'

'सुन्दरी श्मशान में तुम्हारे पास आयी और खाना मांगने लगी....!' अविश्वास और आश्चर्य से मैंने विमल से प्रश्न किया।

'कुछ मांग रही थी' विमल अपनी धुन में बोला, 'अपना हाथ बढ़ा कर उसने कुछ मांगा। मैं समझ गया कि यह भूखी है... कुछ खाने को चाहती है... यार, वो बहुत सुन्दर है.... और बड़ी गहरी चाहत से मुझे देख रही थी....।' कहते कहते विमल का स्वर भावुक हो गया था। मुझे यह जानने की बड़ी उत्सुकता हुई कि वह कैसी लड़की है। दूसरी रात विमल साथ में पूड़ी और मिठाई लेकर चला। रास्ते में मैंने उस लड़की को देखने की इच्छा प्रकट की मगर विमल टालने लगा। वो नहीं चाहता था कि मैं उस लड़की से मिलूँ। वह बोला –'तुम्हें देख कर वो शरमायेगी और मेरे पास भी नहीं आयेगी।'

'ऐसी शरमाने वाली लड़की श्मशान में इतनी रात को अकेले नहीं आयेगी' मैंने कहा।

'तू प्रेम की ताकत नहीं समझता, 'विमल ने खुलते हुए कहा 'वो हम लोगों को आते देखती थी.... देख-देख कर मुझे प्यार करने लगी। कल सबकी नज़रें बचा कर मुझसे मिलने चली आयी। वो बहुत सुन्दर है.... बहुत प्यारी है....।' विमल की आवाज प्रेम की गहराई में डूबी हुई आवाज थी। मैं चुप रहा मगर मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं उसे देख कर ही रहूँगा। श्मशान पहुंच कर हम लोगों ने सायकिल रखी और विमल अंधेरे किनारे की ओर चल दिया। मैं छिप कर उसका पीछा करता रहा। गंगा किनारे अंधेरे में जाकर वह बैठ गया। मैं दूर पेड़ के पीछे से छिपकर उसे देखता रहा। मुझे तो कुछ न दिखा। मुझे लगा कि वह लड़की विमल के दिमाग की कल्पना मात्र है जो मुझे जलाने के लिये उसने बनायी है। थोड़ी देर बाद वहाँ से हटकर मैं इधर-उधर घूमने लगा। अपनी मूर्खता पर मुझे स्वयं हँसी आने लगी। श्मशान में.... रात में लड़की! इतनी असामान्य बात विमल ने बतायी फिर भी उसका झूठ मैं नहीं पकड़ पाया।

बाद में जब विमल मेरे पास आया तो खुशी का आवेग संभाले नहीं संभल रहा था। वह मुझसे लिपट गया और अपने आलिंगन में कस कर भींच लिया। बोला, 'मुझे तो जिन्दगी मिल गयी यार... मेरी जिन्दगी...।'

मैं झल्ला कर बोला, 'छोड़ मुझे! स्साले फिर मूर्ख बना रहा है। अबे, श्मशान में लड़की... तू ऐसी गप्प हाँक जो थोड़ी सी सच तो लगे।'

विमल पर मेरी बातों का कोई असर न पड़ा। उसने मुझे तो छोड़ दिया मगर अपने आप मे डूब गया। 'वह मुझे बहुत चाहती है... इतनी सुन्दर... इतना प्यार.... जिन्दगी कितनी खूबसूरत हो सकती है आज मैंने जाना।'

'अबे ओ नाटकबाज,' मैं जोर से चिल्लाया, 'मैं पेड़ के पीछे छिप कर देख रहा था... स्साले वहाँ कोई लड़की आयी ही नहीं...।'

'अगर कोई नहीं आया तो मिठाई-पूड़ी कहाँ गयी...? मुस्कुराते हुए विमल ने प्रश्न किया तो मैं चुप हो गया। मुझे यह तो विश्वास था कि विमल जो कह रहा है वह गलत है मगर सच क्या है मैं समझ नहीं पा रहा था। वह तो आज भी कहता है कि वहाँ घर पर वो लड़की रोज रात को आती है।

अब कुछ भी समझने को बाकी नहीं बचा था। विमल श्मशान-डाकिनी की गिरफ्त में था। श्मशान-डाकिनी ने काम-बाण से घायल करके उसे अपना प्रेमी बना लिया। डाकिनी नित्य रात्रि उससे संसर्ग कर उसे चूस रही थी। विमल की चेतना उसके सम्मोहन के प्रभाव में थी। शरीर गलने का उसे भान भी न था। वह तो अपनी प्रियतमा के अंकपाश में गहरी तृप्ति का रसास्वादन कर रहा था। मृत्यु की सन्निकटता का उसे अहसास ही न था। मृत्यु तो स्थूल-शरीर के नाश होने को कहते हैं। सूक्ष्म शरीर तो मरता नहीं। विमल वर्तमान में ही सूक्ष्म शरीर के तल पर जी रहा था.... भोग रहा था। इसका मतलब वह मृत्यु के बाद की स्थिति यानि शरीर के नाश की स्थिति में ही जी रहा था। डाकिनी नित्य उसकी कोषिकाएँ और रक्त पी रही थी। धीरे-धीरे वह उसके स्थूल शरीर को निर्जीव कर रही थी। स्थूल शरीर समाप्त होने के बाद विमल को वह अपने लोक में अपने पास खींच लेना चाहती थी। विमल इसके लिये पूर्णतया तैयार था। मिलन तो उसके प्रेम की सफलता थी। यह डाकिनी की जीती बाजी थी। उसके गहरे सम्मोहन और निरन्तर मिलन ने विमल की चेतना पर पूर्ण कब्जा पा लिया था। ग्रास उसके मुँह में था। बस

निगलने की ही देर थी। मैंने आलोक को विदा कर दिया। उसके जाने के बाद मैं विचार करता रहा। दिव्य भाव में प्रवेश करने के बाद पशु-भाव की ये क्रियाएं मैं कैसे करूं? चिड़िया मारने के लिये तोप तो नहीं चलायी जायेगी। फिर हर घटना किसी नियम से ही संचालित हो रही है। डाकिनी के मुँह में गये ग्रास को खींचना क्या उचित होगा? अजय को मुझ पर बहुत विश्वास था। मैंने सारी घटना उसे बतायी और कहा कि अब संभावना नहीं के बराबर है। फिर भी वह जोर देने लगा कि माँ-बाप का इकलौता लड़का है। चला जायेगा तो वे किसके सहारे जियेंगे। अजय की कातरता ने मुझे विचलित कर दिया। मैंने पशुभाव के सिद्ध गौतम को अपने साथ लिया। कामाख्या का साधक गौतम मुखर्जी उन दिनों मेरे सान्निध्य में था। उससे सारी बात बतायी। हम लोगों ने शनिवार की रात चुनी। अजय से भी शनिवार रात ९ बजे घर आने को कह दिया था।

शनिवार रात ९.३० बजे हम लोग घर से निकले। विमल के घर में घुसते ही हमें डाकिनी भागती हुई नज़र आई। विमल ने नागवारी के साथ हम लोगों को देखा। रास में विघ्न पड़ने पर कौन सहज रह सकता है?

'क्या है?' उसने क्रोध से पूछा।

उसकी मां ने कहा, 'बेटा ! ये लोग तुम्हारे इलाज के लिये आये हैं।'

'भाग जाओ।' विमल ने आँखें लाल करते हुए कहा, 'हमें कोई बीमारी नहीं है और न किसी इलाज की जरूरत है।'

गौतम भी असंतुलित होने लगा उत्तेजित होकर बोला–'सुशील भाई के कहने पर मैं यहाँ आया हूँ। तुम जिसे प्रेमिका समझ रहे हो वह श्मशान डाकिनी है। तुम्हारे प्राण लेने आयी है। हम तुम्हें उससे छुटकारा दिलाने आये हैं।'

'मुझे छुटकारा नहीं चाहिये,' विमल उठ खड़ा हुआ उसकी आंखें अंगारों सी धधक रही थीं, 'निकल जाओ तुम लोग।' कहकर वह गुस्से में आगे बढ़ा जैसे हमें उठाकर बाहर फेंक देगा। गौतम भी क्रोधित हो उठने लगा तो मैंने उसके कंधे पर हाथ रखकर बैठे रहने का इशारा किया और आगे

बढ़कर प्यार से विमल के माथे पर हाथ रखा, 'शान्त हो जाओ विमल ! हम तुम्हारे मित्र हैं शत्रु नहीं।' दृढ़ संकल्प शक्ति से प्रेम और आत्मीय भाव से उसकी आँखों में झांकते हुए मेरे स्नेहिल शीतल स्पर्श ने उसके आवेग को रोका। धीरे-धीरे डाकिनी का सम्मोहन क्षीण हो रहा था। दो मिनट बाद वह निढाल हो कर गिरने लगा तो मेरी बांहों ने उसे संभाल लिया। मैंने धीरे से उसे चारपाई पर लिटा दिया। कमजोर विमल की आंखों से ऑसू बहने लगे। मैं प्यार से उसे थपथपाता रहा। अचानक हमारी दृष्टि रोशनदान पर गयी। चोट खायी बाघिन की तरह डाकिनी हमें घूर रही थी। 'डाकिनी को संभालो' मैंने गौतम को आदेश दिया। गौतम ने मंत्र पढ़कर फूँका। डाकिनी चिल्लायी, 'मसान के साधक श्मशान के नियमों को मत तोड़ो। विमल मेरा है, उसे ले जाने दो।'

गौतम ने उत्तर दिया, 'इस समय वह सुशील भाई की शरण में है।'

कुपित दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई वह बोली, "कब तक उसे बचायेंगे... मेरी महक उसके शरीर में बस चुकी है... उसकी चेतना मेरी है। वो मेरा हो चुका है। अब तो ब्रह्मा भी उसे नहीं बचा सकते।'

'जब तक यह शरीरधारी है इस पर शरीरधारियों का अधिकार है। श्मशानी-नियमों का उल्लंघन तुमने किया है।'

"जबर्दस्ती आप लोग कर रहे हैं" डाकिनी साधिकार गुर्रायी, 'इसने स्वयं अपने प्राण संकल्प करके मुझे सौंपे हैं। ये मेरे ठिकाने पर खुद आया था। पहल इसने की है मैंने नहीं।' गौतम ने प्रश्नवाचक दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैं प्रेम, स्नेह करके विमल को शक्ति देने का प्रयास कर रहा था। गौतम से कहा, 'इसे भगाओ।' गौतम ने मंत्र पढ़कर उसे भगा दिया। विमल सो गया। अब मैंने गौतम की प्रश्नवाचक दृष्टि का उत्तर दिया, 'विमल ने उसे भोजन दिया था।'

'मगर डाकिनी ने तो प्राण की बात कही है" गौतम ने पूछा।

'हाँ मैंने क्षोभ भरे स्वर में कबूला, 'डाकिनी ने प्राण मांगे थे मगर विमल ने तो उसे मिठाई और पूड़ी ही खिलायी।'

'मगर सुशील भाई,' गौतम खिन्नता से बोला, 'डाकिनी गलत नहीं है। श्मशानी नियमों के अनुसार पूड़ी मिठाई के रूप मे डाकिनी ने इसके प्राणों की भेट पायी है अनजाने में इसने प्राण भेंट कर दिये और अब इसके होश हवास पूरी तरह उसकी गिरफ्त में हैं। हम इसे कब तक वचा सकेंगे?

'तुम इसे डाकिनी-निरोधक ताबीज पहना दो। मैंने कहा। गौतम ने पास आकर विमल को सूंघा फिर निराशा भरे स्वर में बोला, 'डाकिनी का अंश इसमें समाया हुआ है। ताबीज काम नहीं करेगा।' गौतम के आचरण से स्पष्ट था कि वह संघर्ष करने के पक्ष में नहीं था। उसका मत था कि यदि किसी भी तरह डाकिनी से अब विमल का संबंध-विच्छेद करा भी दिया गया (हालांकि यह बहुत मुश्किल था लगभग असंभव सा) तो डाकिनी का प्रभाव विमल को विक्षिप्त या अपाहिज कर देगा। ऐसी जिन्दगी जी कर भी विमल क्या करेगा? इसके अलावा श्मशानी आचार-संहिता के उल्लंघन का जबर्दस्त प्रायश्चित्त भी करना होगा। मैं भी विचलित हो गया था। कटु नग्न सत्य सामने था। क्या उचित है क्या अनुचित हम कुछ भी समझ नहीं पा रहे थे। हम लोग विचारों में डूबे थे। इसी समय विमल ने आँखें खोलीं और उठने का प्रयास करने लगा। 'क्यों उठ रहे हो?' 'मैने बेखयाली में पूछा।

'बाथरूम जाऊँगा।' सहज-भाव से विमल बोला और उठकर कमरे के बाहर चल दिया। उसे आने में देर हुई तो मैं चौका। गौतम भी शीघ्रता से उठ कर बाहर निकला। आंगन में विमल का पार्थिव शरीर पडा था। डाकिनी उसे लेकर जा चुकी थी।

■ ■ ■

अमरकंटक का शिवलिंग

५-६ वर्ष पूर्व की घटना है। कई दिन से मन व्याकुल था। शिव का कृपा-पात्र हूँ। पात्रता के अनुपात में कृपा बरसती है। उद्विग्न मन कुछ समय के लिए शान्त हो जाता है। पुनः मन अकुलाने लगता है। ऐसे ही अकुलाहट के दिनों में एक सायं लगभग ८ बजे श्री रवीन्द्र कुमार सिन्हा सपरिवार मेरे घर आये। श्री रवीन्द्र कुमार सिन्हा स्टेट बैंक की स्थानीय नखासकोना ब्रांच में कार्यरत हैं। राजरूपपुर में रहते हैं और मेरे छोटे बहनोई हैं। वो मां शारदा के दर्शनार्थ मैहर गये थे। वहाँ से वो अमरकंटक चले गये। अमरकंटक में उन्हें एक सिद्ध पुरुष के दर्शन हुए। साधु के सर के बाल जमीन छू रहे थे। उसने एक शिवलिंग सिन्हा जी को दिया। साधु ने कहा था, विधि-विधान से पूजन होने पर इस पत्थर के आकार में परिवर्तन होगा। कुन्द पत्थर में चमक आयेगी। पहले श्वेत रश्मियाँ झिलमिलायेंगी। कुछ समय बाद फिर नीली किरणें फूटेंगी। जब नीली किरणें निकलने लगें तभी यह पूर्ण जागृत शिवलिंग होगा। 'मैं तो विधि-विधान नहीं जानता।' श्री रवीन्द्र जी ने कहा, 'इसे आप ले लें।'

मैंने उसे हाथ में लिया। लगभग ३ इंच लम्बे और २ १/४ इंच चौड़े उस पत्थर के बीच में एक हल्का सा उभार शिवलिंग का भान कराता था। उनके जाने के बाद उस पत्थर को मैने अपने पूजन-स्थल पर विधि-विधान से प्रतिष्ठित कर दिया। दूसरे दिन प्रातः जब पूजा करने गया तो मुझे उस पत्थर के उभार में वृद्धि लगी। पहले तो लगा कि मन का वहम है मगर फिर ग़ौर से देखने पर लगा कि बढ़ोत्तरी हुई है। स्वयं पर विश्वास नहीं हो पा रहा था। दिन में पत्नी भी पूजा करने जाती थी। उसके निकलने पर पूछना चाहा मगर मन ने रोक दिया। यूँ पूछने पर मिला उत्तर आग्रहों से

ग्रस्त हो सकता है। शाम को पत्नी के साथ एक मित्र के घर जाना था। स्कूटर पर रास्ते में बातें करते हुए बीच में यूँ ही मैंने प्रश्न किया 'बेगम ! आज पूजा करते समय तुम्हें कैसा लगा?' पत्नी चुप रही। मैं आगे बोला, 'वो रवीन्द्र जी वाला शिवलिंग तुमने देखा?' स्कूटर में पीछे बैठी पत्नी सोच में पड़ गयी थी। पत्थर के बारे में पूछते ही अकुलाई, 'एक बात कहें.....।' 'हॉ बोलो' मैने उसे उत्साहित किया। पत्नी बोली, 'मुझे लगता है पत्थर के उभार में रातभर में वृद्धि हो गयी।' मैं उछल पड़ा, 'यार, यही तो मुझे भी लग रहा था।'

लौटकर आने के बाद रात १० बजे खाना परसने वाला चीनी मिट्टी का बाउल लेकर मैंने शिवलिग उसमें डाल दिया और पानी से बाउल भर दिया। शिवलिंग का उभार जल में डूब गया। अब उभार की वृद्धि आसानी से प्रमाणित हो जायेगी। नित्य देखता रहा और उसके उभार में वृद्धि होने लगी। नये उभार भी बनने लगे। मेरे आश्चर्य और हर्ष का पारावार न रहा। बहुत से लोगों से इस बात की चर्चा की। यूनिवर्सिटी के वनस्पति विभाग के डॉ० बाल कृष्ण मालवीय, डॉ० गिरजेश कुमार, ए०जी०यू०पी० के जमील, गोपाल गौड़, मुरारी लाल अग्रवाल, गोविन्द सिन्हा आदि बहुत से लोगों से चर्चा की। कुछ लोगों ने कहा कि कुछ पत्थर बढ़ने वाले भी होते हैं। शिवलिंग देखने के बाद वैज्ञानिकों ने प्रमाणित किया कि ये बढ़ने वाली प्रजाति का पत्थर नहीं है। कुछ ने यह भी कहा कि यह पत्थर अमरकंटक का नहीं लगता। नर्मदा की तलहटी में पाये जाने वाले पत्थरों से यह भिन्न है। मेरे मन-प्राण को वह साधु और अमरकंकट मथने लगे।

हिमालय पर्वत की श्रृंखलाओं में बदरीनाथ, केदारनाथ जैसे तीर्थ हैं। विंध्य पर्वत की श्रृंखलाओं में बहुत से दिव्य स्थलों में प्रमुख है अमरकंटक। मध्य प्रदेश में शहडोल जिले में शहर से एक सौ कि०मी० दूर अमरकंटक की पहाड़ी सोन एवं नर्मदा का उद्गम स्थल होने के कारण भी विख्यात है। विंध्य पर्वत स्वयं में बहुत संपन्न है फिर भी हिमालय जैसा सम्मान न पाने के कारण कहते हैं एक बार विध्य पर्वत को क्रोध आ गया। यदि ऊँचाई ही

समाज में सम्मान पाती है तो मैं हिमालय से भी ऊँचा होकर दिखाऊंगा। विंध्य पर्वत बढ़ने लगा। प्रकृति में उथल-पुथल मच गयी। पर्यावरण का सन्तुलन गड़बड़ाने लगा। विंध्य पर्वत दिन प्रतिदिन ऊँचा होने लगा। लोगों ने प्रार्थना की। ईश्वरीय प्रेरणा से एक ऋषि (संभवतः अगस्त्य) उधर से गुज़रे। विंध्य पर्वत ऋषि को देख प्रार्थना में झुका। ऋषि ने आशीर्वाद दिया और कहा कि रुके रहो मैं आता हूँ। तब के गये ऋषि आज तक नही लौटे और प्रार्थना में झुका विंध्य आज तक नहीं उठा। आदर, नम्रता और प्रार्थना का दूसरा ऐसा उदाहरण जल्दी नहीं मिलेगा। विध्य पर्वत की श्रृंखलाएँ दूर से बैठी ही नजर आती हैं। हिमालय जैसी कोई चोटी नहीं दिखती।

अमरकंटक से ४० कि०मी० आगे कोटा (बिलासपुर) में मेरे बड़े बहनोई प्रिसिपल थे। श्री एम०एन० सिन्हा (वर्तमान में बिलासपुर में प्रिंसिपल) ज्योतिष शास्त्र के विलक्षण ज्ञानी हैं। भाग्य परिवर्तन के प्रयोगों में मैंने उनसे कई बार सहायता ली है। वे भविष्यवाणी करते थे और मैं तंत्र क्रिया से उसमें परिवर्तन किया करता था। अस्तु, मैं सपरिवार कोटा (करगी रोड) दुर्ग एक्सप्रेस से पहुंच गया। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद अमरकंटक जाने का कार्यक्रम बनाया। भांजे-भांजियाँ भी लाद लिए। अली अहमद एण्ड संस की रायपुर से इलाहाबाद लौटती हुई बस प्रातः ५.३० बजे कोटा में पकड़ी। दिन में अमरकंटक पहुंच गये। बस स्टैंड के ठीक सामने धर्मशाला लाज है। हम लोग धर्मशाला में ठहरे। यूं तो वहां बर्फानी बाबा और कल्याण बाबा के आश्रम भी हैं पर सामान्य व्यक्ति को वहॉ ठहरने की अनुमति नहीं है। मैंने वहाँ के पर्यटनस्थलों की जानकारी ली। माई की बगिया, सोन एवं नर्मदा का उद्गम, प्राचीन मंदिर, कपिलधारा और दूधधारा वहां के मुख्य आकर्षण हैं। रात में खाना खाने के बाद मुख्य मंदिर गया तो वह बन्द हो चुका था। मुख्य सड़क पर टहलने लगा। वातावरण स्तब्ध था। एक गहरी खामोशी... जगती हुई.... बोलती हुई खामोशी छाई थी। अंधेरे में भी एक सजीव आकर्षण था। सांय-सांय करता हुआ सन्नाटा ऊर्जापूर्ण तरंगों से आच्छादित था। मन बार-बार उसमें डूब जाने को व्याकुल हो रहा था मगर पत्नी साथ में थीं उसकी बातें मेरे तारतम्य को बार-बार खंडित कर देती थीं।

दूसरे दिन जल्दी उठकर मंदिर गये। मन्दिर का आधुनिकीकरण हो चुका है। मन्दिर में अन्य नई मूर्तियाँ शोभायमान थीं। चमकते हुए भगवा वस्त्रधारी साधुओं ने मुझे निराश किया। आधुनिकीकरण की दमदमाहट भरी चकाचौंध धर्म का नहीं धार्मिक व्यावसायिकता का प्रमाण होती है। वहाँ से लौटकर हम लोगों ने किराये पर सायकिलें ली और ६ कि०मी० दूर कपिलधारा की ओर चल दिये। कुछ दूर तक मुख्य मार्ग पर चलने के बाद मार्ग कटकर कपिलधारा की ओर जाता है। कपिलधारा और दूधधारा जल-प्रपात हैं। जल-प्रपात के आस-पास का दृश्य प्राकृतिक सौन्दर्य से ओत-प्रोत होता है। हमलोग कपिलधारा पहुंच गये। बड़ी भान्जी अनुपमा सिन्हा (वर्तमान में बिलासपुर विश्वविद्यालय में प्रवक्ता) सायकिल चलाने में कमजोर होने के कारण पीछे छूट गयी थी। तारु-तारन (भांजों) दोनों भान्जे वर्तमान में मध्य प्रदेश सिविल सर्विस में पी.सी. एस. हैं को भेजा उसे ढूँढ़ने के लिये। पत्नी और बच्चों में गरमागरम बहस चल रही थी। सब अपनी ढपली पर अपना राग छेड़ रहे थे। इन सबसे थोड़ा हटकर मैंने वातावरण का जायजा लिया। सामने कपिल-धारा का जल-प्रपात था। एक पुलिया उस पार जाने के लिए थी। पुलिया के पहले एक जर्जर चाय की दुकान थी। वहाँ एक बुढ़िया चाय बना रही थी। उसी के पास सायकिल रख मैं चाय पीने लगा। कहाँ मिलेगा वह सिद्ध पुरुष? धारा की तलहटियों में या तलहटियों के इर्द-गिर्द छाये घने जंगलो में या किसी सुनसान मन्दिर में.... मेरा खोजी मन भटक रहा था। मैं स्वयं नहीं आया... शिव-लिंग देकर बाबा ने मुझे निमंत्रण दिया है। मिलने की पहल अब उन्हें ही करनी चाहिये, 'माई ! यहाँ कोई साधु हैं?' मैंने बुढ़िया से प्रश्न किया। वो मुस्करा कर इशारा करते हुए बोली, 'उस मन्दिर में साधु हैं।' इसी समय पत्नी उत्तेजित मनःस्थिति में आई, 'आप चाय पी रहे हैं! अनु लतिका अभी तक नहीं आई। तारु-तारन उन्हें ढूँढ़ने गये हैं उनका भी अता-पता नहीं।' मैंने शान्त स्वर में कहा, 'ये इलाहाबाद नहीं अमरकंटक है। यहाँ किसी तरह का कोई डर नहीं है। लड़कियों के बारे में तुम निश्चिंत रहो। वे आ जायेंगी।' पत्नी पुनः कुछ कहने को हुई

तो मैंने उसे दूर से आती हुई अनु, लतिका को दिखाया। सायकिल की हवा निकल जाने के कारण बेचारी पैदल आ रही थीं।

मैंने सबको इच्छानुसार घूमने के लिए स्वतंत्र कर दिया और स्वयं जल-प्रपात के किनारे बने मन्दिर में गया। ३०-३२ वर्ष का आदिवासी साधु मेरे सामने था। मूर्ति की ओर इशारा करते हुए उसने पूजा करने का संकेत किया। मैं पूजा करते हुए उसके हाव-भाव देखता रहा। उसकी दृष्टि रुपयों पर थी। जब मैंने कुछ नहीं चढ़ाया तो वह निराश होकर दूसरे पर्यटकों की तरफ चला गया। मैं भी निराश हुआ। ये वो नहीं....। बाहर आया और जल-प्रपात के किनारे-किनारे आगे बढ़ने लगा। थोड़ी दूर पर ही जल-प्रपात की तलहटी तक उतरने के लिये सीढ़ियाँ बनी थीं। बच्चे आनन्दपूर्वक जल में किल्लोल कर रहे थे। मैं भी उनके साथ हो लिया। वहाँ से निकलकर हमलोग दूध-धारा तक गये। मैंने सोच लिया। आज इन लोगों को जल्दी-जल्दी सब दिखाकर वापस भेज दें फिर अपने हिसाब से खोज करेंगे। दूध-धारा देखकर वापस लौटे। खाना खाया फिर सोन और नर्मदा के उद्‌गम स्थल पर गये। उद्‌गम स्थल के सामने दो तरफ साधुओं के निवास स्थल बने थे।

तीन तरफ ऊँचा पहाड़ और पहाड़ से लगी हुई गहरी खाई। जरा-सा पैर फिसल जाने पर हजारों फीट नीचे... और गिर जाने के बाद शरीर का कोई अंग मिल पाना बड़ा मुश्किल था। उद्‌गम-स्थल पर पर्वत जल उगल रहा था। थोड़ा सा सामान्य शहरी नल जैसा निकलने वाला जल इतनी विशाल नदी का रूप धारण कर लेता है। मेरी ६ वर्ष की लड़की शुट्टू (शस्या) हर्ष से पागल हो रही थी। वह बार-बार उद्‌गम स्थल पर खतरनाक ढंग से लपकती। उसे संभालना मुश्किल हो रहा था। किसी तरह उसका ध्यान हटाकर पहाड़ी की ओर ले आये। थोड़ी ऊँचाई पर बैठकर सबने विश्राम किया। मैं वहाँ रहने वाले साधुओं के पास गया। सबसे मिला, मगर कोई भी मुझे प्रभावित न कर सका। वहाँ से लौटकर आया। चाय पी और फिर सारे बच्चों को बस पर बैठाकर कोटा रवाना कर दिया। बार-बार ज़ोर देने पर भी पत्नी नहीं ग़यी। उसका कहना था – आप जो चाहे करिये...। जहां चाहे जाइये... मैं कुछ नहीं बोलूँगी... बस आपके साथ रहूँगी। रात में मैंने

उसे बताया कि कल सुबह हम लोग कपिलधारा की ओर चलेंगे। साथ में खाना ले लेना... शायद बहुत देर लग जाये।

दूसरे दिन हम लोग जल्दी निकले। सायकिल लेकर कपिलधारा पहुंचे। बुढ़िया की दुकान पर सायकिल खड़ी की। उसे हमारे पुनः आने पर आश्चर्य हुआ, 'आज फिर आये हो?' 'हॉ माई।' मैंने कहा–'एक साधु को तलाश कर रहा हूँ।' बुढ़िया मुस्कुराई। मै उस पर ध्यान दिये बगैर आगे बढ़ गया। पत्नी से बोला, 'जल प्रपात के साथ-साथ जंगलों के बीच से चलते रहना है। चलते-चलते दूध धारा आई। हम न रुके और आगे चलते गये। मुझे लग रहा था कि यहीं कहीं उस सिद्ध पुरुष से मुलाकात हो सकती है। लगभग ४-५ किलोमीटर जंगली रास्ते पर बढ़ आये थे। कामिनी थक गई थी। जंगली जानवरों का भी डर था। मगर कुछ कहने की हिम्मत नहीं कर पा रही थी। मुझे उसपर तरस आ गया पास पड़ी चट्टान पर बैठ गया। वह भी सुस्ताने लगी। इतने में सूखे पत्तों पर पदचाप सुनाई दी। कोई आ रहा था। पदचाप से स्पष्ट था कि आने वाला कोई मनुष्य ही है। मुझे लगा कि साधु बाबा आ रहे हैं। मन-मयूर नाच उठा। आंखों में चमक आ गई... आज मनोरथ सफल हुआ। पदचाप करीब आ रही थी। पत्नी निर्विकार भाव से मुझे देख रही थी। मुझे लगा ये नादान क्या जाने कि कलियुग में सिद्ध पुरुष का मिलना कितना बड़ा सौभाग्य है। मैं व्यग्रता से चारों तरफ देख रहा था। पदचाप आहिस्ता-आहिस्ता पास आ रही थी। मैं बहुत उत्तेजित था। अचानक एकदम पास ही पेड़ों के झुरमुट से प्रकट हुआ एक फारेस्टर। मैं हतप्रभ, अवाक् देखता रहा औह वह सामने आ खड़ा हुआ, 'इधर टूरिस्ट नही आता.... जंगली जानवरों का खतरा है....।' मै चुपचाप उसे ताक रहा था। उसकी आवाजें कान में जा रही थीं मगर दिमाग कुछ समझ नहीं पा रहा था। मेरे चुप रहने पर वह समझा कि मैं रास्ता भूल गया हूँ। उसने कहा, 'चलिये रास्ता दिखा दूँ।' अब तक मैं' ज़मीन पर वापस आ चुका था। उठ खड़ा हुआ और यह कहते हुए झटके से वापस लौट पड़ा, 'मैं रास्ता जानता हूँ।' वह चुपचाप पीछे खड़ा जहाँ तक हम दिखाई देते रहे देखता रहा। सोच रहा होगा कि कितने अजीब हैं ये लोग?

दूध धारा पर आकर हम ठहरे। कामिनी वस्त्र न होने के कारण नहाने को तैयार नहीं थी। मैंने नीचे उतरकर जल प्रपात के नीचे स्नान किया। पानी बहुत ठंडा था। ऊपर से सीधे सिर पर गिर रहा था। खून जमने सा लगा। सिहर कर हटा। अचानक विपरीत दिशा की ओर दृष्टि गई तो एक खोह सी दिखी। उत्सुकतावश मैं उसी हालत में खोह में प्रवेश कर गया। खोह में एक विशालकाय शिव-लिंग था। मैं उससे लिपटकर आलिंगन में बांधकर दोनों हाथों की उंगलियाँ छू नहीं सकता था। एक बूढ़ा साधु पूजा कर रहा था। मुझे देखकर उठा। अगरबत्ती और माचिस मुझे देकर बोला; 'पूजा चढ़ाओ।' मैं अगरबत्ती और माचिस हाथ में लिये उसे देखता रहा। वह आगे बोला, 'ये दुर्वासा ऋषि की गुफा है। ये शिव-लिंग दुर्वासा ऋषि का शिव-लिग है।' खोह के ऊपर से रिसता हुआ जल लगातार शिव-लिंग पर गिर रहा था। निर्जन-स्थान गुफा... जागृत शिव-लिंग.... शिव-लिंग..... पूजा करने वाला बूढ़ा साधु.... कहीं यही तो वो नहीं.... मेरा मन गहरी सोच में डूब रहा था। बूढ़े ने विचार भंग किया, 'चढ़ाओ..... चढ़ाओ।' मैने अगरबत्ती जलाकर परिक्रमा की। अभी मैं पूजा ठीक से कर भी न पाया था कि बूढ़े ने पैसे की मांग की। ऐसे स्थल पर पूजा करने वाला पैसे की मांग करे... विचित्र विरोधाभास था। हाव-भाव से वह साधु लगता ही नहीं था मगर समय और स्थान उसके साधु होने की संभावना बढ़ा रहे थे। अन्यमनस्क सा मैं बाहर आया और ऊपर पत्नी के पास पहुंचा। कामिनी (पत्नी) परेशान हो रही थी कि बग़ैर कपड़े पहने कहाँ चले गये। मैं तौलिये से बदन पोंछकर कपड़े पहनने को हुआ कि बूढ़ा वहाँ आ गया और अपनी आदिवासी भाषा में मनमनाने लगा। उसका उलाहना था कि अगरबत्ती ले ली मगर पैसा नहीं दिया। कामिनी ने ५ रु. उसे दिये तो खुश होकर आशीर्वाद देता चला गया।

अब वहाँ ठहरने का औचित्य न था। अनमने भाव से हम वापस लौटे। चाय वाली बुढ़िया के पास से सायकिल उठाते हुए मुझे अचानक कुछ कौंधा। मैं, उसके पास गया 'माई ! वो नीचे बूढ़ा साधु कौन है?' वो मुस्करा कर बोली, 'मुझे नहीं मालूम।' मैंने ५ रु. निकालकर उसे दिये और कहा, 'माई!

सच सच बता दो... मैं किसी से कुछ नहीं कहूंगा.. बता दो कि वह कौन है? 'साधु' कहकर वो हंसने लगी। उसने बताया कि नीचे वाला और ऊपर वाला साधु ससुर-दामाद हैं। दिन भर साधु का ढोंग रच कर पैसा कमाते हैं और रात को दारू पीकर बंटवारा करते हुए लड़ते है।

लौटकर वापस आये। रास्ते में कामिनी ने पूछा –'कब वापस चलेंगे?' मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया –'कल सुबह।' रात को खाना खाने ढाबे पर गये। वहीं पर ढावे के मालिक से बात हुई। उसने बताया कि नर्मदेश्वर महादेव का प्राचीन शिवलिंग उसी भव्य आधुनिक मन्दिर के पीछे है। वर्ष के ११ महीने वह शिवलिंग जल में डूबा रहता है। एक वृद्ध साधु पचासों वर्ष से उस शिवलिग की पूजा कर रहा है। रात के ६ बज रहे थे। मैं शीघ्रता से मन्दिर की ओर बढ़ा। कामिनी पीछे आ रही थी। मुख्य द्वार खुला था। वहॉ बैठे साधुओं से मैंने प्राचीन शिवलिंग के बारे में पूछा। उन्होंने मन्दिर के पीछे की तरफ़ इशारा किया। थोड़ी दूर जाने पर नीचे उतरने को सीढ़ियाँ बनी थीं। मैं नीचे उतरा। एक आठ फीट लम्बी ६ फीट चौड़ी कोठरी बनी थी। बीच में जलमग्न शिवलिग था। दीवारों पर आधे ईट की कार्निश सी बनी थी। सरसों के तेल का दिया जल रहा था। अगरबत्ती जल रही थी और आधे ईट की कार्निश पर उकडूँ बैठा वृद्ध साधु साधना मे लीन था। मेरी आशा बांध तोड़ने लगी। यही... शायद यही है शिवलिग भिजवाने वाले सिद्ध पुरुष। 'बाबाजी।' मैंने श्रद्धा से आवाज दी। बाबाजी कुछ न बोले। मैंने पुनः पुकारा मगर वो कुछ न बोले। अपनी साधना में डूबे रहे। यह सिद्ध पुरुष का लक्षण था। मेरा मन बल्लियों उछलने लगा.... तो तलाश पूरी हुई। कई बार आवाज़ देने पर भी वो कुछ न बोले तो दूसरी कार्निश पर मैं भी उकडूँ हो कर बैठ गया। जिस मंत्र को जिस चक्र पर जिस गति से वो जप रहे थे उसी तल पर मैंने भी जप प्रारंभ कर दिया। बाबा को झटका सा लगा। पलट कर मेरी ओर देखा। मैं मुस्करा कर बोला, 'प्रयागराज से आया हूँ... मेरा प्रणाम स्वीकार करें।' बाबा माला जपना रोककर मेरी ओर घूमे। मैं श्रद्धा और प्रेम से उन्हें देख रहा था। 'प्रतिदिन कितनी माला

जपते हैं?' मैंने प्रश्न किया। '१००८' बाबा ने निर्विकार भाव से उत्तर दिया। उनके बोलने के ढंग और हाव-भाव से मुझे धक्का लगा।

'कब से यहाँ जप रहे हैं?' मैंने प्रश्न किया।

५० वर्ष से बाबा ने सपाट स्वर में उत्तर दिया।

'इसके पहले आप कहाँ थे?' पूछते-पूछते मुझे विश्वास होता जा रहा था.... ये वो नहीं।

'हरिद्वार में।' बाबा आगे स्वयं बोले, 'बीस बरस की उम्र में साधु हो गया। २५ वर्ष हरिद्वार में रहा। ५० वर्ष से यहाँ हूँ।' बाबा के मुख पर तपस्या का तेज नहीं था। पवित्रता की कान्ति भी न थी। आँखों में कोई रस न था। शरीर सूखा था। सिद्ध पुरुष तो छोड़ो ये लक्षण तो साधक के भी नहीं हैं। ये तो सामान्य सा शरीर लिये हुए विचलित मन का व्यक्ति है।

'शिव के दर्शन हुए।' यूँ ही मेरे मुँह से प्रश्न निकला। बड़े आत्मीय भाव से बोले बाला, 'कहाँ भैय्या! नर्मदेश्वर बहुत कठोर हैं।' बाबा के स्वर में कातरता आ गई थी, 'नर्मदा मैय्या का शाप है... अमरकंटक में शिव प्रकट नहीं हो सकते। इसी से नर्मदा घाटी सुनसान पड़ी है।' बाबा खुलते चले गये। बहुत दिनों बाद उन्हें कोई शिव भक्त मिला था। उनसे बातें करते हुए मेरे मन में रह-रहकर प्रश्न उठ रहा था... पचास वर्षों से इतना जप करने वाले व्यक्ति का आत्मिक विकास क्यों नहीं हुआ? बाबा बोलते-बोलते अनर्गल भी बोलने लगे। इतनी गहरी साधना। लगभग दिनभर जप करने वाला व्यक्ति आध्यात्मिक विकास से रहित क्यों? अचानक उत्तर हृदय से प्रकट हो गया—मंत्र-जप यदि भाव से कट जाता है तो वह यांत्रिक हो जाता है। यांत्रिक जप विक्षिप्तता, अर्धविक्षिप्ता को जन्म देता है। श्रद्धा रहित, विश्वास रहित, भावरहित जप आत्मिक विकास के स्थान पर आत्मिक पतन का कारण बन जाता है। मैं उन्हें प्रणाम कर वापस चला आया। अब इस प्रश्न का उत्तर कौन दे कि शिवलिंग किसने दिया?

■ ■ ■

वृन्दावन-बिहारी के दर्शन

लोग भूत-प्रेत (मृतात्माओं) का अस्तित्व नहीं मानते। वैज्ञानिक युग का प्रमुख मापदंड तर्क है। तर्क की कसौटी पर जो बात खरी नहीं उतरती आधुनिक युग उसे स्वीकार नहीं करता। भाव जगत हृदय से संबंध रखता है। बहुत सी चीजें महसूस की जाती हैं। जैसे बिजली का नंगा तार स्पर्श करते ही करेन्ट मार देता है। बिजली दिखायी नहीं देती, महसूस की जाती है। इस तरह की महसूस की जाने वाली भावजगत की घटनाओं को तर्क के मानदंडों पर नहीं किसी अन्य मानदंड पर समझना पड़ेगा इसी तरह सूक्ष्म नियमों से संचालित होने वाली सूक्ष्म जगत की घटनायें स्थूल जगत के मानदंडों पर कैसे समझी जा सकेंगी? बुखार थर्मामीटर से नापा जाता है। आलू तराजू पर तोला जाता है। अगर कोई अड़ जाय कि मैं बुखार को तराजू में ही तोल कर मानूंगा तो उसे आप क्या कहेंगे? इसी तरह लोग जिद करते हैं कि ऊपरी शक्ति से मेरा साक्षात्कार हो तभी मैं मानूंगा कि ये होती हैं।

बच्चा चलना महीनों में सीखता है, पढ़ना वर्षों में सीखता है। इसी प्रकार ऊपरी शक्ति का साक्षात्कार करने के लिये उसकी प्रक्रिया सीखनी पड़ेगी। बगैर पूर्वाभ्यास के अचानक ही कोई सायकिल चलाना नहीं प्रारंभ कर सकता। आज परा-जगत के बारे में सही ज्ञान देने वाले शिक्षक बहुत कम हैं... लगभग नहीं के बराबर। इस जगत को समझने के लिये जिज्ञासु, जुझारू ईमानदार लोग भी नहीं हैं। सामान्यतया लोग यह कहने में बड़ा गर्व समझते हैं कि ये सब अन्धविश्वास है.... मैं तो नहीं मानता... अरे, तुम्हारे मानने न मानने से क्या होता है? आंख बन्द करके अंधेरा, अंधेरा चिल्लाने से सूर्य का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जायेगा। तथ्यों से मुंह मोड़ लेने से तथ्यों का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जायेगा। स्थूल शरीर के अन्दर सूक्ष्म और सूक्ष्म

में कारण शरीर के अस्तित्व को कोई भी ज्ञानी अस्वीकार नहीं कर सकता। मृत्यु की घटना स्थूल शरीर के नष्ट होने की घटना है। मृत शरीर जलाने के बाद भी सूक्ष्म शरीर बचा रहता है। आवश्यक नहीं कि वह भी स्थूल के साथ ही नष्ट हो जाय।

मृतात्माओं की अपनी एक अलग दुनिया होती है। इनका भी अपना एक समाज होता है। इनके सगे, संबंधी, रिश्तेदार, मित्र-शत्रु सब कुछ मनुष्य समाज जैसा ही होता है। ये भी उत्सव मनाते हैं। खुशी से नाचते गाते हैं। वक्त-बे-वक्त दुःखी भी होते हैं। मनुष्य जैसी ही इनकी संवेदनशीलता होती है। ये मनुष्य के जीवन में हस्तक्षेप नहीं करते। ये पहल कर ही नहीं सकते। मनुष्य ही इनके जीवन में हस्तक्षेप करता है। जिन वृक्षों पर उनका वास है उन्हें काट दिया जाता है तो प्रतिक्रिया वश ये परेशान करते हैं। उनके रहने के स्थान पर मनुष्य घर बनवा लेता है। उनके स्थलों को थूककर या पेशाब करके अपवित्र करता है। बहुत से तांत्रिक उन्हें बुलाकर उनसे काम करवाते हैं। उन्हें सिद्ध कर अपनी इच्छानुसार नचाते हैं। इन शक्तियों को वशीभूत कर जगत में चमत्कार करने की लालसा व्यक्ति को श्मशान में खींच लाती है। बहुत से नवयुवक कुछ रोमांचकारी असाधारण सामर्थ्य अर्जित करने को श्मशान में आते हैं। रसूलाबाद घाट (इलाहाबाद) में चिन्मयानन्द मिशन के संजय स्वामी के नेतृत्व में युवकों का दल सक्रिय है। संजय स्वामी ने कई मंदिरों की जीर्णोद्धार का पुनीत कार्य किया है और आज भी पूरे उत्साह एवं जोश के साथ सक्रिय हैं।

श्मशान-साधना में आप किसी शक्ति को जागृत करते हैं। वो जागृत शक्ति आपके अधीन रहती है। आपके आदेशों का पालन करती है। आपकी इच्छानुसार कार्य करती है। किन्तु यदि आपकी पकड़ कमजोर हुई... या शक्ति जागरण के अनुष्ठान में कोई कमी हुई..... या आपके मानसिक बल में कोई कमी आयी... किसी भी विपरीत परिस्थिति में स्थिति उलट जायेगी आपकी शक्ति आप पर चढ़ जायेगी और आप स्वयं उसके गुलाम बन जायेंगे। अधिकांशतः वह श्मशानी शक्ति आपकी आत्मा को शरीर से मुक्त

कर अपना दास बना लेती है। श्मशानी साधना तलवार की धार पर चलने जैसी है। इस पार या उस पार। बीच में समझौते की, बचाव की कोई गुंजाइश नहीं है। रसूलाबाद श्मशान घाट में आने वाले साधकों की आये दिन श्मशानी कारणों से मौत होती रहती है। मौत का असली कारण कोई नहीं समझ पाता। हाल में ही ऐसी हृदय विदारक मौत हुई है इन्दु श्रीवास्तव की... उसकी मौत ने बहुतों को हिला दिया है। डॉ० डी०एस० लाल (भूतपूर्व शिक्षक इ० विश्वविद्यालय) का प्रिय पुत्र इन्दु बड़े-बड़े बाल और बड़ी-बड़ी भयावह आंखों वाला इन्दु, राजीव मिश्रा, कमल सिह, वीरेन्द्र सिंह आदि युवकों का स्नेही विश्वास-पात्र मित्र इन्दु बहुतों का भला करने वाला बहुतों को बल देने वाला इन्दु इलाहाबाद से वाराणसी के बीच एक दुर्घटना में मर गया। कौन समझ सकेगा कि जिन शक्तियों को वशीभूत कर वह गौरवान्वित होता था वही उसकी मौत का कारण बनी। कौन जाने कब कौन श्मशानी शक्तियों के चंगुल में नश्वर काया को छोड़ दें।

दिनांक ६ अक्टूबर, १९९७ को कमल सिंह ने आत्महत्या कर ली। लोग कहते हैं कि व्यक्ति क्षणिक उबाल में आत्महत्या करता है। यदि उस क्षण उसे रोक लिया जाय तो फिर उन्माद उतर जाता है। कमल सिह की मौत-अपवाद है। प्रातः ६ बजे उसने आत्महत्या का निर्णय लिया। गंगा मे कूद पड़ा। डूबने लगा। मल्लाहों ने जान बचा ली। रसूलाबाद घाट पर नित्य आने वालों से मल्लाहों का परिचय हो जाता है। कमल सिह तो कई वर्षों से रसूलाबाद घाट पर आ रहा था।

गंगा किनारे थोड़ी देर तक पड़ा रहा फिर जाने क्या सूझी कमल सिह श्मशान घाट में बनी हुयी चिता पर लेट गया। अर्थी उठाकर श्मशान घाट पर लाने वाले लोग अपने किसी खास व्यक्ति को पहले भेज देते हैं जो जाकर चिता बनवाता है। लकड़ी खरीदने... ढोकर चिता स्थल तक ले जाने... चिता बनने में समय लगता है। मृतक का सगा-संबंधी यदि पहले से चिता बनवा लेता है तो शव लाने वालों को अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। चौक में कोई मरा था। उसके संबंधी ने चिता बनवाई थी। कमल उस चिता पर लेट गया। संबंधी अवाक। कमल चिल्ला रहा था–'मुझे जला दो....।'

महाराजिन ने उसे उठाना चाहा। जगदीश ने जबरन उठाया बोला, 'ई का मज़ाक है.... उठो कमल....। कमल उठ गया। जाते-जाते वह कह रहा था, 'मैं आज ही जलूँगा... मैं आज ही मरूँगा....।' कहते-कहते वह शिव-मन्दिर पहुँचा। वहाँ पर गुप्ता पूजा कर रहा था। कमल सिंह हल्ला मचाने लगा तो गुप्ता ने उसे चुपचाप पूजा करने का इशारा किया। कुछ देर कमल सिह ने पूजा की। गुप्ता से बोला, 'मेरी आखिरी इच्छा पूरी कर दो.....।'

गुप्ता ने इशारे से प्रश्न किया। कमल बोला, 'एक सिगरेट पिला दो....। उसे सिगरेट दे दी गयी। सिगरेट पीकर कमल अपने घर की ओर चल दिया। लोगों ने समझा कमल का दिमाग़ शान्त हो गया। आत्महत्या का फितूर दिमाग से निकल गयां।

कमल सिंह ने घर पहुँचकर अपने पिता की लाइसेन्सी पिस्तौल निकाली। वह दरवाजा बन्द कर स्वयं को गोली मारने जा रहा था कि यश मालवीय के बच्चे चिल्लाये–'कमल चाचा! हमारी गेंद फेंद दो।'

यश मालवीय और कमल सिंह का घर आस-पास है। यश के बच्चे-भतीजे बाल खेलते हैं। अक्सर बाल कमल के घर चली जाती थी। बच्चे चिल्लाकर कमल चाचा से बाल माँगते थे। कमल चाचा बाल दे देते थे। कमपटी पर नाल सटाये आत्महत्या को आतुर कमल बच्चों की आवाज अनसुनी न कर सका। ठहर गया। दरवाजा खोलकर बाहर निकला। बाल उठायी और बच्चों की ओर बढ़ा। एक हाँथ में बाल और दूसरे में पिस्तौल। बच्चों ने पूछा–'यह पिस्तौल असली है?' कमल ने बाल दे दी। प्रश्न का उत्तर न दिया। वापस पलट गया। बच्चे आपस में बहस करने लगे। कोई बोला–असली पिस्तौल थी। दूसरा बोला 'नहीं....। नकली खिलौना है....।'

इसी बीच धाड़-धाड़ की ध्वनि ने बच्चों की बहस समाप्त कर दी। कमल सिंह ने स्वयं को गोली मारकर आत्महत्या कर ली थी।

समाचार पत्रों ने सुर्खियों से छापा। मेंहदौरी कालोनी में गरम चर्चा हुयी। मित्र परिचित अटकलें लगाते रहे। आत्महत्या का कारण कोई न समझ

पाया। सुदर्शन स्वस्थ मेधावी २८ वर्षीय युवक की मृत्यु का कारण आज तक कोई न समझ सका।

समाज में रहने वाले मनुष्यों का प्रत्यक्ष रूप से इन शक्तियों से कोई सरोकार नहीं है। ये भोग योनि में हैं। इनकी स्वतंत्र इच्छाशक्ति नहीं है। सामान्यतया विधि के स्थिर विधान से संचालित होते है। मनुष्य जब इन्हें बुलाता है तो ये आ जाते हैं। मृतात्माओं से संपर्क करने की विधि को प्लान्चट कहते हैं। प्लान्चट कई प्रकार के होते हैं। सैकड़ों विधियां हैं। सबसे ज्यादा प्रचलित एक पद्धति लिख रहा हूँ। मैंने बहुत सी स्कूल की लड़कियों (कक्षा ८ से १२वीं कक्षा तक) को इस विधि से मृतात्माओं को बुलाते देखा है। एक बड़े सफेद कागज पर वर्णाक्षर (अंग्रेजी में) लिखे होते हैं। एक ओर नमस्ते/प्रणाम/आदाब लिखा होता है। दूसरी ओर हां/ना लिखा होता है। बीच में एक गोला बनाकर सिक्का रख दिया जाता है। उस सिक्के पर लड़कियां अपनी उंगली रख देती हैं। उंगलियों का स्पर्श बहुत हल्का होता है। मृतात्मा का आवाहन किया जाता है। बुलायी गयी मृतात्मा के आने पर सिक्का चलने लगता है। सिक्के के चलने पर पहले अभिवादन का आदान-प्रदान होता है फिर ये पूछा जाता है कि आप हमारे प्रश्नों के उत्तर देंगे? सिक्का चल कर 'हां' वाले खाने में पहुंच जायेगा। इसके बाद आप प्रश्न पूछते हैं। मृतात्मा सिक्के के माध्यम से उत्तर देती है। अन्त में अभिवादन के पश्चात मृतात्मा का प्रस्थान होता है और प्लान्चेट समाप्त होता है। इसी तरह स्टोव पर भी प्लान्चेट होता है। कुर्सी पर भी होता है। अन्य तरह-तरह के साधनों का प्रयोग भी होता है। मातृ शक्ति की आराधना करने वाले उच्च कोटि के साधक देव-शक्तियों के आवाहन हेतु लड़कियों को भी माध्यम बनाते हैं। नवरात्र में अक्सर कन्याओं पर मां दुर्गा का आवाहन किया जाता है। देव-लोक की शुभ शक्तियों के आवाहन हेतु कुंवारी कन्यायें ही उपयुक्त माध्यम होती हैं। इलाहाबाद में हीवेट रोड पर मोतीमहल फिल्म टाकीज़ के निकट रहने वाले विख्यात तांत्रिक डॉ० कपूर विभिन्न शक्तियों के आवाहन हेतु कई महिला-माध्यम रखते थे। उन्हें जानने वालों को याद होगा उनके दरबार में अभुआती हुई (सर घुमाती हुई) औरतें।

प्लान्चेट करना या मृतात्माओं से किसी भी रूप में संपर्क करना अच्छा नहीं होता। अन्ततः इसके परिणाम घातक ही होते हैं। कौतूहलवश/उत्सुकतावश बनाया गया संबंध जानलेवा भी हो सकता है। उनके दिये हुए उत्तर शत प्रतिशत सही नहीं उतरते। कभी-कभी तो पूछे गए प्रश्नों के पचास फ़ीसदी उत्तर भी सही नहीं निकलते दूसरे, सबसे बड़ी गड़बड़ी ये है कि आप बुलाते किसी को हैं और आती कोई और मृतात्मा है। छल-कपट स्वार्थ फरेब मृतात्माओं की दुनिया में भी होता है। आप बार-बार भिन्न-भिन्न आत्माओं को बुलाते हैं। आपको नहीं पता कि बार-बार भिन्न-भिन्न मृतात्माओं को बुलाने पर भी आती वही एक मृतात्मा है। अधिकांशतः भिन्न-भिन्न नामों को धारण करने वाली एक मृतात्मा अकेली ही आपके संपर्क में रहती है। प्लान्चेट करने वालों को मेरी बात का विश्वास नहीं हो रहा होगा। मेरी बात परखने के लिये आप प्लान्चेट करते हुए किसी जीवित संबंधी की आत्मा बुलाइये। वह भी आ जायेगी। तब मेरी बात का विश्वास कर लीजियेगा।

आपको नहीं मालूम जितना आप उनसे संपर्क करने की इच्छा रखते हैं उससे कहीं ज्यादा वो आपसे संपर्क करना चाहती हैं। मृतात्माओं की अतृप्त वासनायें, कामनायें मनुष्य शरीर की अभिलाषी हैं। शरीर विहीन स्थिति में भटकती हुई आत्मा में अपनी इच्छा कैसे पूरी करें? उन्हें चाहिये कोमल हृदय, कमज़ोर इच्छाशक्ति वाले सहृदय स्नेहिल शरीर जिनपर आसानी से कब्जा कर सकें। इस दृष्टि से किशोरियां हर तरह से उपयुक्त हैं। उनका रक्त और कोषिकाएं नरम हैं और उत्तम हैं। वय संधिकाल मृतात्माओं के प्रवेश के लिए हर तरह से उपयुक्त होता है। लड़कियों के मृतात्माओं से संबंध शीघ्र ही बन जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह प्रमाणित है कि किशोरियों की कोशिकाएं ऊर्जा और उर्वरता से लबालब होती हैं। किशोरियों को क्या पता मृतात्माओं से संपर्क कितना हानिकारक होता है। संपर्क में आते ही मृतात्मायें अपना आहार ग्रहण करना प्रारंभ कर देती हैं और संपर्क समाप्त होने तक बहुत सी कोषिकाएं और रक्त चूस चुकी होती हैं। करोड़ों कोषिकाओं वाले

शरीर में इस नगण्य हानि का पता नहीं चलता। विज्ञान अभी तक इस हानि को ज्ञात करने में असमर्थ है। एक बार संपर्क में आने के बाद मृतात्मा फिर जाती नहीं... वहीं बनी रहती है। प्लान्चेट करने वाले के अवचेतन मन को बार-बार प्लान्चेट करने को उकसाती है। कभी वस्तुओं को गिराकर, खिड़की दरवाजों पर आहट करके अपनी उपस्थिति दर्शाती है। इनकी आयु मनुष्य की सामान्य आयु से अधिक होती है। अतः अपने सान्निध्य में रहने वाले मनुष्यों को मरणोपरान्त अपने सान्निध्य में ही रोक लेती हैं। इसी कारण मृतात्माओं से संपर्क रखने वाले की मुक्ति नही होती। मरणोपरान्त वे भवंर लोक (मृतात्माओं का लोक) में ही अटक जाते हैं।

१९८१ की बात है मेरे पिता विद्युत परिषद्, आगरा में लेखाधिकारी के पद पर कार्यरत थे। कमलानगर के पास बालकेश्वर में माचिसवाले लाला की कोठी में उनका कार्यालय था। भूतल पर कार्यालय था। प्रथम तल पर लाला का परिवार रहता था। द्वितीय तल पर पिता का निवास था। मैं इलाहाबाद में ही रहता था। गर्मी और जाड़े में जब बच्चों के स्कूल बन्द हो जाते तो हम सपरिवार आगरा चले जाते थे। बच्चों को दादी-बाबा के पास बहुत अच्छा लगता था। हम कभी ताजमहल घूमने जाते। कभी फतेहपुर सीकरी तो कभी दयाल बाग के सत्संग में जाते। बालकेश्वर महादेव का प्राचीन मंदिर थोड़ी ही दूर पर था। दिन में शिवलिंग सीखचों में बन्द कर दिया जाता था। मगर मुख्य द्वार खुला होने के कारण मंदिर प्रांगण में प्रवेश की कोई समस्या न थी। स्पर्श की कोई अनिवार्यता तो है नहीं। सम्मुख शिवलिंग हो तो भी पूजन हो सकता है।

पिताजी के कार्यालय में वृन्दावन निवासी शर्माजी एकाउन्टेन्ट थे। शर्मा जी बड़े धार्मिक व्यक्ति थे। सरल मन के भावुक शर्मा जी नित्य प्रातः २ घंटे पूजा करते थे। पूजा के बगैर अन्न जल न ग्रहण करते थे। वो शनिवार को वृन्दावन चले जाते और सोमवार को देर से कार्यालय आते। सप्ताह के बीच में भी मौका निकालकर वृन्दावन भागने के चक्कर में रहते थे। कार्यालय के काम में उन्हें कोई रुचि न थी। बिहारी जी के परम भक्त... चर्चा होती तो

शर्माजी की आंखे भर जातीं। उनमें बच्चों जैसी सरलता थी। यही सरलता निश्छलता और निष्कपटता ही तो वह कसौटी है जिस पर भक्त को समझा जाता है। शर्माजी वास्तव में भक्त थे। बिहारी प्रेम में डूबी हुई उनकी भाव-भरी आंखें रस से सराबोर रहती थीं।

बिहारी के इस रंगीले भक्त को क्या बताऊं कि हर व्यक्ति को स्वधर्म में ही बरतना चाहिए। गुरु या इष्ट स्व के विकास हेतु अनुकूल मार्ग बतलाता है। कभी शर्माजी अपना हाथ दिखलाते तंत्र के ज्योतिष के बचकाने प्रश्न पूछते। मेरे अन्दर बिहारी प्रेम भरने के लिये वो कटिबद्ध से लगते। मेरे तर्क न करने पर और चुप रहने से उनका उत्साह बढ़ता जा रहा था। कभी द्वारिकाधीश (मथुरा) की कथा सुनाते कभी वृन्दावन की गलियों में भटकती हुई गोपियों का वर्णन करते और कभी मुरली मनोहर की कुंज-गलियों में बांसुरी की ध्वनि आज भी सुनाई देने का वृतान्त सुनाते-सुनाते भावुक हो जाते। भाव-विभोर होकर वह सस्नेह आग्रह करते, "मेरे कहने पर एक बार बिहारी जी का दर्शन कर लीजिये।"

उनके आग्रह पर और घरवालों की इच्छा पर पिताजी ने मथुरा-वृन्दावन घूमने का प्रोग्राम बनाया। शनिवार को आगरा से चलकर मथुरा के दर्शनीय स्थलों को देखकर वृन्दावन पहुंचना था। रात वृन्दावन में ही गुजारनी थी। सोमवार की प्रातः वापसी थी। कोई विशेष रुचि न होने पर भी मेरे लिए कार्यक्रम की अवहेलना कर पाना संभव न था। शर्माजी की खुशी का ठिकाना न था। जोश में कह रहे थे बिहारी जी की कृपा के बिना कोई बिहारी जी का दर्शन नहीं कर सकता। बिहारी जी ने ही मुझे बुलाया है। मेरे धार्मिक होने का वक्त आ गया। अब मैं बिहारी भक्त हो जाऊंगा... हर्षातिरेक में वे जाने क्या-क्या सोच रहे थे। उनकी बातों से मुझे कुछ चिढ़ सी होने लगी थी।

कार्यक्रम के अनुसार हमारा पूरा परिवार शर्माजी के साथ जीप में बैठकर मथुरा के लिए चल पड़ा। आगरा-मथुरा के मार्ग पर उन दिनों एक पागल बाबा बहुत बड़े मंदिर का निर्माण करवा रहे थे। पागल बाबा के भव्य

निर्माणाधीन मंदिर को देखकर विचित्र लगा। आशा है अब तक वह मंदिर पूर्ण हो गया होगा। मथुरा में द्वारिकाधीश का मंदिर देखकर हम लोग मोदी गेस्ट हाउस (वृन्दावन) जा पहुंचे। वहीं हमारे ठहरने की व्यवस्था थी। पास ही हरे रामा हरे कृष्णा वालों का विशाल मंदिर है। इस मंदिर की मूर्तियां विलक्षण हैं। सजीव मूर्तियां जैसे अब बोली कि तब....।

हमारे पहुंचते ही घर गये शर्माजी ठीक ७ बजे आ गये। उम्र में बड़े होने के कारण मैं कुछ कह नहीं पा रहा था मगर अब उनके बिहारी-प्रेम से मुझे चिढ़ होने लगी थी। आते ही.... 'आज बिहारी जी का कलियों से श्रृंगार हो रहा है.... अद्‌भुत छटा होगी.... आप बहुत सौभाग्यशाली हैं जो बिहारी जी का ऐसा मनोहारी दर्शन पायेंगे.....।' आदि आदि। सब लोग तैयार होते-होते उनकी बातों का मजा ले रहे थे मगर मैं अन्दर ही अन्दर कुढ़ रहा था। हम लोग तैयार होकर निकले तो जय घोष हो रहा था। शर्माजी की आतुरता–'जल्दी चलिये... मंदिर के कपाट खुल गये.... बिहारी जी की छटा अद्‌भुत है....।' एक ओर गलियों में मंदिर, दर्शनार्थियों की भीड़, उस पर शर्माजी की अनवरत बिहारी-महिमा का गान... मंदिर पहुंचते-पहुंचते मैं बुरी तरह खीझ चुका था। घर के सब लोग मंदिर में प्रविष्ट हो गये मगर मैं द्वार पर ठिठक गया।

'चलिये न!' शर्माजी ने व्यग्रता से कहा 'नहीं! मैं न जाऊंगा।' मैंने दृढ़ता से इन्कार कर दिया।

शर्माजी हतप्रभ रह गये, 'यहां तक आकर आप बिहारी जी का दर्शन नहीं करेंगे?' शर्माजी ने साश्चर्य पूछा।

'नहीं।' मैं पुनः दृढ़ता से बोला।

शर्माजी अवाक, निराश विचित्र नज़रों से मुझे देख रहे थे। शायद उन्हें आज तक ऐसा आदमी नहीं मिला था जो मंदिर के दरवाजे तक आकर मंदिर न जाये।

पुनः स्वयं को सामान्य कर समझाते हुए बोले, 'आपको क्या हो गया?

यहां पर खड़े-खड़े आप अपना समय व्यर्थ गवांयेंगे। अन्दर चलकर दर्शन कीजिये। ऐसा सौभाग्य जीवन में बार-बार नहीं आयेगा।'

शर्माजी की विवशता पर मुझे खुशी हो रही थी। मैं मुस्कराता खड़ा रहा। मेरी मुस्कराहट पर शर्माजी की हिम्मत बढ़ी। जबरदस्ती करते हुए बोले 'चलिये अब! एक बार देख तो लीजिये।'

'किसको देख लें?' मैंने मुस्कराते हुए पूछा 'बिहारी जी को और किसको?' चकित भाव से शर्माजी बोले।

'क्या आप बिहारीजी को दिखा सकते हैं?' गंभीर स्वर में मैंने प्रश्न किया।

'हां-हां' शर्माजी शीघ्रता से बोल पड़े। 'मैं बचपन से यहां आता हूं। सभी पुजारी मुझे पहचानते हैं। आपको करीब से दर्शन कराऊंगा।'

मैं पुनः दृढ़ स्वर में बोला, 'मैं मूर्ति की बात नहीं कर रहा... क्या आप बिहारी जी का दर्शन करा सकते हैं।' अब शर्माजी क्या बोलते 'मूर्ति-मूर्ति ही है चाहे श्रृंगार जितना भी भव्य हो', मैं पुनः मुस्कराकर बोला, 'अगर बिहारी जी का दर्शन करा सकते हों तो चलूं नहीं तो...।' कह कर मैं पलटा और पास की दुकान पर पान खाने बढ़ गया। शर्माजी कुछ क्षण तो अवश्य मुझे ताकते रहे फिर पलट कर मंदिर में प्रवेश कर गये।

मैंने पान वाले से पान लेकर मुंह में दबाया ही था कि किसी ने मेरे कन्धें पर हांथ रखा और कान में फुसफुसाते हुए बोला, 'क्या सचमुच बिहारी जी का दर्शन करना चाहते हो?'

'हां' अनायास ही मेरे मुंह से निकल गया।

वह मुझे साथ लेकर एक कोने की ओर बढ़ गया फिर धीरे से बोला १०० रु. लगेंगे। अब मैं चौंका। गौर से उसका जायजा लिया। इकहरे बदन का साढ़े पांच फिट का वह आदमी कुर्ता पायजामा पहने था। उसके चेहरे पर लोलुपता और आंखों में चालाकी झलक रही थी। मेरी संशयात्मक

दृष्टि पर वह मुस्कराया और बोला, 'दर्शन करके संतुष्ट हो जाना तब रुपया देना।'

'क्या तुम बिहारी जी का यानि कृष्ण भगवान का दर्शन कराओगे?' मैंने स्पष्ट प्रश्न किया।

'मैं नहीं कराऊंगा... दर्शन तो गुरू महाराज करायेंगे... मगर रुपया मैं लूंगा।' उसका उत्तर स्पष्ट था।

'कहॉ हैं तुम्हारे गुरु महराज?' मैंने पूछा। उसने आगे गली में चलने का इशारा किया। चलते-चलते मैं बोला, 'सुदर्शन चक्रधारी मुरली मनोहर भगवान कृष्ण का दर्शन क्या तुम करा सकते हो?' वह जल्दी में बोला,' धीरे बोलो लोग सुनेगे तो भीड़ लग जायेगी। 'तुम सच्चे आदमी हो। तुम्हारी वातें मै सुन रहा था। उसी समय ने मुझे प्रेरणा दी कि इसको दर्शन कराओ।' मक्कारी से मुस्कराते हुए वह बोला।

चलते-चलते मैंने अपना प्रश्न पुनः दोहराया तो वह बोला, 'धीरज रखो... अभी अपने आंखों से भगवान कृष्ण के दर्शन कर लेना मगर हमें दिखाओ कि १०० रु. तुम्हारे पास है भी या नहीं' कहते-कहते वह ठहर गया। मेरे पास १५० रु. थे। जेब में हाथ डालकर १०० रु. का नोट निकालकर उसे दिखा दिया। वह संतुष्ट होकर फिर चलने लगा। १०० रु. का लालची यह घटिया आदमी क्या सचमुच मुकुट बिहारी का दर्शन करायेगा? मुझे विश्वास नहीं हो रहा था। निश्चय ही यह एक फरेबी है। चालबाजी से मुझसे १०० रु. ठगना चाहता है। मगर कितने विश्वास से यह कह रहा है। कौन सी चाल है? क्या सच है क्या झूठ? मैं समझ नहीं पा रहा था। १०० रु. ही तो जायेंगे बहुत होगा तो पास का १५० रु. छीन लेगा। मैं विस्मित था। १०० रु. में भगवान कृष्ण के दर्शन ! हे शिवशंकर। क्या कलियुग में कृष्ण इतने सस्ते हो गये! अचानक वह एक घर में घुसा.... लम्बा अंधेरा गलियारा। उसने मेरा हांथ पकड़ा और धीरे-धीरे अंधेरे में आगे बढ़ने लगा। आंगन आ गया। वहां भी अंधेरा था। मेरा पैर फिसल गया। गिरते-गिरते बचा। झल्ला कर बोला 'बत्ती जलाओ।' 'यहां बिजली नहीं है।' वह शान्ति से बोला।

फिर हाथ पकड़कर आगे बढ़कर एक दरवाजा खोला। कमरे में ढिबरी जल रही थी। ७-८ लोग बिगड़ने लगे कि दर्शन के नाम पर १ घंटे से यहां बैठा रखा है। 'बस! अब ये आ गये हैं। ५ मिनट में सारी व्यवस्था हो जायेगी।' मेरी ही तरह वे सारे लोग भी विहारी दर्शन हेतु लाये गये थे। लोगों के चांव-चांव मचाने पर मुझे संबोधित करते हुये वह बोला, 'इन्हें समझाइये भाई साहब ! लोग कई-कई जन्म साधना करते रहते हैं मगर भगवान के दर्शन नहीं होते बिहारी-दर्शन के लिए ये घंटे भर का विलम्ब भी नहीं सह पा रहे हैं।' कहते-कहते वह अन्दर के दरवाजे से दूसरे कमरे में चला गया। एक क्षण को तो लगा कि ठीक ही कर रहा है मगर फिर लगा कि इतने लोगो को बिहारीजी सामूहिक दर्शन देंगे... वो भी १००-१०० रु. में... ये तो बाजीगरी का खेल हो गया। कैसे संभव है? तप-जप ध्यान आदि क्रियाओं से आत्मशुद्धि होती है तब कही जाकर बिहारी दर्शन देते हैं यहां तो....। उसे वापस आते देख मेरे विचार रुक गये थे। एक-एक कर हम सबको वह अन्दर के कमरे में ले गया। वहां एक लालटेन रखी थी। भगवा वस्त्र पहने गले में मोटे-मोटे रुद्राक्ष की मालायें पहने कुशासन पर एक साधु बैठा था। कमरे में एक ओर दरी बिछी थी। हम सबको उसने दरी पर बैठा दिया। सामने कुशासन पर बैठा साधु... साधु जैसा लगता ही नहीं था। ये भगवान का दर्शन कैसे करायेगा? फिर लगा कि भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्तित्व शायद ऐसे ही होते हों। ईश्वर या ईश्वर तक पहुंचा हुआ व्यक्तित्व हमारी धारणा और पूर्वाग्रहों के अनुसार हो यह आवश्यक तो नहीं। अधिकांशतः सत्य कल्पनाओं से अलग होता है। साधु अपने पास के स्थल को इंगित करते हुए बोला, 'यहीं पर आप लोगों को बिहारी जी के दर्शन होंगे। अब मैं लालटेन बुझा देता हूं।' एक दर्शक तुरन्त बोला, 'आप लालटेन बुझा देंगे तो हम लोग अंधेरे में बिहारी जी को कैसे देखेंगे?'

साधु मुसकरा कर बोला, 'जगमगाते बिहारीजी का दर्शन करने के लिये किसी भी प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। बिहारी जी के प्रकट और अन्तर्ध्यान होने तक कोई कुछ बोलेगा नही और न कोई अपने स्थान से हिलेगा। बिहारी जी के पास आकर उन्हें स्पर्श करने की चेष्टा मत करना

नहीं तो उसी वक्त भस्म हो जाओगे।' लोगों ने सहमति में सिर हिलाया। हम लोगों को लाने वाला आदमी उठा और उसने सबसे रुपये मांगे। सबने १००-१०० रु. उसे दे दिये मैंने भी १०० रु. उसे दे दिये।

साधु ने लालटेन बुझा दी। आश्चर्य कि लालटेन के बुझते ही इंगित स्थल पर प्रकाश होने लगा। श्वेत प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ने लगा। प्रकाश वर्तुलाकार घूमने लगा। वह नाचता हुआ पारदर्शी प्रकाश का गोला बढ़ते-बढ़ते लगभग ६ फिट का हो गया। आहिस्ता आहिस्ता बिहारी जी प्रकट हो रहे थे। हम सांस रोककर बिहारी जी को प्रकट होते देख रहे थे। नटखट मुस्कान मुख पर, एक हांथ में बांसुरी और दूसरी ओर सुदर्शन चक्र। दिव्य वस्त्रों आभूषणों से सुसज्जित बिहारी जी की छटा मनोहारी थी। शिख से नख तक बिहारी जी का वो अद्भुत रूप मुझे आज भी याद है। लगभग आधे मिनट तक बिहारी जी का पूर्ण दर्शन हुआ फिर वे अन्तर्ध्यान हो गये। प्रकाश का गोला भी नाचते-नाचते कम होता गया और फिर गायब हो गया। हमको तो होश तब आया जब वह आदमी कहने लगा, 'चलिये, बाहर निकलिये।'

हम सब लोग मकान से बाहर निकल आये। आहिस्ता-आहिस्ता मोदी गेस्ट हाउस की ओर बढ़ते हुए मैं सोच रहा था–'क्या आज भगवान के दर्शन हो गये?

दूसरे दिन मैं निश्चय कर चुका था भले ही १०० रु. की चोट और हो जाय मगर आज फिर बिहारी जी के दर्शन करूंगा। शाम ६.३० बजे से ही उस पान की दुकान पर खड़ा होकर उस आदमी का इंतजार करने लगा। लगभग ७ बजे वह नज़र आ गया। मैंने उसे पकड़ा और पुनः दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की। वह सहर्ष तैयार हो गया। मैं उसके साथ उसी घर में उसी कमरे में पहुंच गया। आज मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ी। लगभग १ घंटे बाद जब दस लोग हो गये तो वह अन्दर के कमरे में ले गया। वही साधु महाराज वही कल की बातें, सब कुछ कल जैसा ही हुआ। मैं सोच चुका था कि मुझे क्या करना है।

जैसे ही बिहारी जी प्रकट हुए उसके मुख को पूर्ण एकाग्रता से देखते

हुए मैंने अपने सिद्ध मंत्र का सघनता से जप प्रारंभ कर दिया। १०-१२ सेकेंड में ही बिहारी जी का मुख विकृत होने लगा। साधु महाराज जोर से चिल्लाये, 'कौन' क्या कर रहा है?' मैं अविचलित बिहारी जी के मुख पर दृष्टि जमाये, एकाग्रता से जप करता रहा। बिहारी जी का मुख विकृत हो चुका था। अब शरीर खण्डित हो रहा था। साधु चीख रहा था। दर्शकगण बड़बड़ाने लगे थे। कोई कुछ समझ न पा रहा था। मैं पूरी एकाग्रता से जप में संलग्न था। लगभग १ मिनट में बिहारी जी पूर्णतया गायब हो चुके थे और तड़पता हुआ पिशाच सामने लोट रहा था। साधु ने उसे बुलाया था मगर वापस नहीं भेज पाया। सिद्ध मंत्र ने उसे बांध दिया था। पिशाच साधु को हिंसक दृष्टि से देख रहा था। इसी समय दर्शक बटोर कर लाने वाले आदमी ने लालटेन जला दी साधु महाराज समझ गये कि भेद खोलने वाला मैं ही हूं। मेरा ध्यान पूर्णतया एकाग्र था। पिशाच की तड़पन बढ़ने लगी। साधु मेरे सामने गिरकर लोटने लगा, 'छोड़ दीजिये उसे... जाने दीजिये उसे... नहीं तो मैं मर जाऊंगा।' वापस न जा पाने की स्थिति में पिशाच निश्चय ही अपने बुलाने वाले का नुकसान कर सकता था। साधु के आर्तनाद पर मैंने पिशाच को छोड़ दिया। मैं कुपित हो बोला, 'भगवान के नाम पर फ्राड करते हो? पिशाच को बिहारी जी के रूप में दिखाकर रुपये कमाते हो....।'

मेरे साथ सभी लोग उत्तेजित हो गये। उसने सबके रुपये वापस किये। सबके जाने के बाद मेरे साथ हुयी वार्ता में उसने बताया–हालांकि यह घृणित कार्य मैंने किया है मगर इससे अर्जित धन का अधिकांश भाग मैंने मंदिर निर्माण में लगाया है। उसने चलकर वह निर्माणाधीन मंदिर मुझे दिखाया। फिर भी गलत-गलत ही होता है। आस्थाओं से खेलना पिशाच को वशीभूत कर बिहारी जी के रूप में बिहारी-प्रेमियों को दिखाना... बिहारी जी की सत्ता....। चलते हुए उसने वादा किया कि भविष्य में फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा।

■ ■ ■

अनोखा साधक

एक असामान्य घटना आपके सामान्य मानदंडों पर प्रस्तुत करने की इच्छा हो रही है। एक बार मेरे पास एकान्तिक साधना करने वाला कामाख्या का उच्च कोटि का साधक आया था। अमावस की रात थी। मैं उस साधक को लेकर गंगा किनारे अपने पूजन-स्थल पर बैठा था। यदा-कदा ही कोई ईमानदार वास्तविक साधक मिलता है। अपने अनुकूल व्यक्ति का सान्निध्य संगत बहुत आनन्द देती है। समय कम था। और विचार अधिक, हम लोग गूढ़ वार्ता में मगन थे। इसी बीच बाहर का दरवाजा खटका। मुझे याद आया कि मैंने एक सप्ताह पूर्व ये समय स्वयं से मिलने के लिए एक व्यक्ति को दिया था। उस व्यक्ति का शनि बहुत खराब चल रहा था। शनि के विपरीत होने के कारण धन का नाश, संबंधों का नाश और अब तो आत्महत्या के विचार भी आ रहे थे। दुर्घटनाओं से उसका मनोबल पूरी तरह टूट चुका था। आज रात ६ बजे शनि की शान्ति के उपाय हेतु उसे समय दिया था। उस समय यह भान भी न था कि आज रात्रि ६ बजे हमारा समय इतना मूल्यवान हो जायेगा कि क्षणों का विघ्न भी नागवार लगेगा। बाहर से आने वाला व्यक्ति कमरे के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ। पास बैठा साधक क्षण मात्र में सारी बात समझ चुका था। संगत में व्यवधान पड़ने की तकलीफ़ मुझसे अधिक उसे हो रही थी। आगन्तुक महाशय द्वार पर खड़े विनीत भाव से मुझे देख रहे थे। मेरे कुछ बोलने से पूर्व ही साधक मेरी ओर झुका और धीरे से पूंछा, 'जी! आप क्या चाहते हैं? इनके शनि ठीक होय जाए?'

मैं झटके से बोला, 'अरे, और क्या यार इसीलिये तो ये बेचारा इतनी रात में यहां आया है।' साधक उठा। द्वार से बाहर निकला। ऊपर आकाश में शनि की ओर देखा और चीखा, 'हट....! हट....! बगल हट!' पहला हट

उसने धीरे से... दूसरा हट जोर से और फिर 'बगल हट' तो बहुत जोरों से डांट कर कहा था। साधक ने उस आदमी को विदा किया, 'जाओ... शनि ठीक हो गये।' उस आदमी ने मेरी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा। मैने उसे चुपचाप चले जाने का इशारा किया। ये घटना स्वयं मेरे लिये आश्चर्यजनक भी थी। मुझे लगा उस आदमी को भगाने के लिये साधक ने झूठ-मूठ का नाटक किया है। कौतूहलवश मैने पूंछा, 'क्या इसका शनि ठीक हो गया?' सामान्य स्वर में साधक ने उत्तर दिया, 'हां जी! बहुत टेढ़ रहेन...! सुनत नै रहेन...! जब ज़ोर से डांटा है तब बगली भयेन।' मुझे आश्चर्य हो रहा था। विनीत भाव से मुझे और वातावरण को सामान्य करने के लिये हंसते हुए आगे बोला, इनही सबै के संगें जिन्दगी गुजरि गै.... हमेशा देतै तो रहित है.... अब कुछ कहब तो न मनिहै का?' कहते-कहते हो हो कर वह लापरवाही से हंसने लगा।

शनि ग्रह की शक्ति किसे नहीं मालमू। रावण को धोखा देने वाला शनि! मेघनाथ की मृत्यु का कारक शनि! जगत को नाच नचाने वाला शनि। शनि के प्रकोप से शनि के अतिरिक्त कोई और नहीं बचा सकता। तमस की प्रबल शक्तियों में एक प्रबल दुर्दान्त और संवेदनहीन शक्ति शनि यूं ही 'हट.... हट... बगल हट' बस इतना कहने से ठीक हो जायेगा! बस इतना कहने से वाममार्गी शनि अनुकूल हो जायेगा? शनि-शांति के कितने व्यय-कारक उपाय कष्ट साध्य अनुष्ठान महीनों का नियम और प्रतिदिन का संयम सहित जप के उपाय और कहां १ मिनट की डॉट.. नहीं नही! इस तरह शनि नहीं ठीक हो सकते!

दूसरे दिन प्रातः मेरे घर की घंटी बजी। मैंने द्वार खोला। मुझे देखते ही आने वाला मेरे चरणों पर गिर पड़ा। एक क्षण को तो मैं समझ ही नहीं पाया कि ये कौन है? फिर जब पहचाना तो ये नहीं समझ पा रहा था कि इसका भाव क्या है? मुझे दुर्घटना की आशंका हुई... रात भर में न जाने क्या अहित हो गया। कंधे पकड़ कर उसे उठाया... आंखों में हर्ष के आंसू और मुख पर श्रद्धा की मुस्कान थी। वह बोला, 'आप साक्षात् भगवान हैं

भाई साहब! आपने मुझे नयी जिन्दगी दी है। मेरा सर्वस्व आप पर न्यौछावर है....।' वह बोलता रहा और मैं सोचता रहा औघड़दानी! ये क्या लीला है? किया किसी ने और आभार मुझे! करते तुम हो और श्रेय मुझे! बनाते तुम हो और प्रशस्ति मुझे! कदम-कदम पर मिलने वाले इस सम्मान, ख्याति या श्रेय का मेरे अस्तित्व से क्या सरोकार है ये सिर्फ मैं जानता हूं या तुम जानते हो महाकाल। बड़े-बड़े श्रेयों के रूप में अपनी कृपा बरसाने वाले गंगाधर! मैं मिथ्या कृतित्व के अभिमान में नहीं बह सकूंगा। बाधाओं से लड़कर आगे बढ़ना आसान है नीलेश्वर! प्रशंसा के... ख्याति के मद से तटस्थ रह पाना मुश्किल है नागेश्वर! हर प्रकार के मीठे तीखे कड़वे फीके विष से मेरी रक्षा करना शेषधर!

पता चला कि रात में दो देनदारों ने भारी धनराशि (जो बकाया थी) चुकता कर दी। उनसे नाराज होकर पत्नी मायके चली गयी थी। रात ११ बजे ट्रेन पकड़कर प्रातः ५ बजे क्षमा याचना के साथ वह वापस आ गयी। प्रातः लोक सेवा आयोग के कर्मचारी ने उन्हें बताया कि गोपनीयता से पता चला है कि उनके लड़के का किसी प्रतियोगी परीक्षा में चयन हो गया है। कल रात से आज प्रातः तक उनका जीवन ही बदल गया। घटनाक्रम चीख-चीख कर कह रहा था कि शनि का प्रभाव बदल गया। कल तक का प्रतिकूल शनि अनुकूल हो गया।

कुछ लोग कहेंगे कि जो हुआ यही होना था। कुछ बदला नहीं। सब कुछ इसी ढंग से ऐसे ही घटित होना था। जो घटा यही होना था या घटनाक्रम बदला ये कैसे पता चलेगा?

विधि का विधान क्या है? विभिन्न स्तरों पर विभिन्न नियमों का जाल घटनाओं का संचालन करता है। सामान्यतया व्यक्ति के जीवन की घटनायें ग्रहों से संचालित होती हैं। आपकी जन्मकुण्डली, हाथ की रेखाएं या मस्तक की रेखायें ग्रहों की स्थिति दर्शाती है। ग्रहों की स्थितियां विभिन्न प्रकार की घटनाओं का संकेत देती हैं। यदि ज्योतिषी आपकी मौत की भविष्यवाणी कर रहा है तो ग्रहों के योग मारकेश बना रहे हैं। यदि किसी प्रक्रिया से

अनुष्ठान से किसी भी विधि से ग्रहों की स्थिति में कोई परिवर्तन किया जा सके तो गृह स्थिति बदलने के साथ ही घटनाक्रम भी बदल जायेगा। इसमें कहीं विधि के विधान की अवमानना भी नहीं है। विधि का विधान तो विराट नियमावलियों का एक विशाल संग्रह है जो प्रकृति की चेतन अचेतन समस्त घटनाओं का संचालन कर रहा है। ग्रह-नक्षत्रों के अनुसार मारकेश भी विधि बना रहा है। मारकेश से बचने के उपाय भी विधि के द्वारा ही निर्मित है और उनसे बचाव होना भी विधि के विधान के अन्तर्गत ही है। ग्रह-नक्षत्रों में परिवर्तन किया जा सकता है। परिवर्तित ग्रहों के फल स्वयं ही परिवर्तित हो जायेंगे। ज्योतिष के ग्रहों के प्राकलन को प्रकाट्य और स्थिर समझ लेना बुद्धिमानी नहीं है। ग्रहो के अलावा और भी बहुत सी शक्तियां हैं जो आपके जीवन को प्रभावित करती हैं। बहुत सी ऐसी शक्तियां आपके पास हैं जिनसे आप ग्रहों को प्रभावित कर सकते हैं उनमें परिवर्तन कर सकते हैं और उन्हें बदल भी सकते हैं। इसमें मनुष्य की इच्छाशक्ति, पितरों का आशीष, ऋषि का संरक्षण और इष्ट की कृपा। ये सब शक्तियां ग्रहों से बड़ी हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इनमें से यदि एक शक्ति का भी सही उपयोग किया जा सके तो ग्रह-नक्षत्रों के विधान में परिवर्तन हो जायेगा।

उपरोक्त घटना को सही ढंग से समझने के लिये भारत की शासन व्यवस्था से तुलना कर रहा हूँ। भारत में शासन व्यवस्था भारतीय संविधान के अनुसार चल रही है। ठीक इसी प्राकर विश्व की समस्त घटनायें ईश्वर की इच्छानुसार घट रही है। आप जहां भी रहते हैं मान लीजिये कि आपको क्षेत्र का दरोगा परेशान कर रहा है। दरोगा अपना क्षेत्राधिकारी है वह आपको कानून की नियमावली के अन्तर्गत ऐसा परेशान कर सकता है कि आपका जीना हराम हो जाये। आप उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही न कर पायेंगे। यदि वह बुद्धिमानी से आपके पीछे पड़ जाये तो आपका सुख-चैन समाप्त और आप कानून का दरवाजा भी न खटखटा सकेंगे क्योंकि उसने भारतीय कानून संहिता का कहीं उल्लंघन नहीं किया।

अचानक आपको एस.एस.पी. का सोर्स मिल गया। अब दरोगा भी

वही है, शक्ति भी वही है आप भी वहीं हैं... कानून भी वही है मगर घटना क्रम बदल जायेगा। वही दरोगा जो कल तक आपकी जान हलकान किये था सलाम करने लगेगा और फल फूल पहुंचाने लगेगा। ये समस्त घटनाक्रम भारतीय संविधान के अन्तर्गत ही घट रहा है कहीं किसी धारा की कोई अवहेलना नहीं हुई। आपका जीवन चाहे दुखमय हो और चाहे सुखमय भारतीय संविधान का इससे कोई सरोकार नही। ईश्वर को इससे कोई लेना देना नहीं। दूसरे अर्थों में अपने सुख-दुख के कराण आप स्वयं हैं। आपके कर्म ही सुख्र-दुख के कारण हैं। पूर्व जन्म के कर्मों से जन्म के समय की ग्रह-स्थितियों से आप संचालित हो रहे हैं। वर्तमान सुख-दुख के कारण स्वयं आप हैं तो इसमें परिवर्तन की शक्ति भी आप में ही है। आप प्रारंभ तो करें, आप में राम से रावण तक बनने की पूरी संभावनायें है।

मूल विषय पर वापस चलते हैं। कामाख्या के साधक के कह देने मात्र से शनि बदल गये। ये अपने संबंधों की बात है। जिसने ग्रहों से जैसे संवंध वनाये हों... जिन प्रक्रियाओं से जिस तरह के संबंध बनाये हो। संप्रेषण के जिस माध्यम से उसका अधिकार हो वह वैसे क्रियाशील हो सकता है। जिसने निवेदन क़ी भाषा सीखी है... निवेदन की प्रक्रिया और अनुष्ठान सीखे हैं वह निवेदन ही करेगा।

दूसरा स्तर बराबर का है। मित्र भाव.... सहयोगी भाव... जियो और जीने दो का सा भाव! इसी सृष्टि की विभिन्न स्तर की विभिन्न शक्तियों के बीच मनुष्य स्वयं एक बहुत बड़ी शक्ति है। मनुष्य में शक्ति की अपार संभावनायें छिपी हैं। ग्रह नक्षत्रों के प्रति मित्रवत् भाव रखकर उनके अस्तित्व के प्रति जागरूक रहना हर अनुष्ठान में उनका भाग उन्हें देना और उनके प्रति अच्छा भाव रखना और उनके साथ जीना। जगत में जैसे मित्र और सगे संबंधी होते हैं उसी तरह के भाव के साथ ग्रहों के साथ भी जिया जाता है। वक्त पर जैसे मित्र सहायक होते हैं उसी तरह ग्रह भी हमारी बातें मान लेते हैं। कभी-कभी जैसे मित्र दगा दे जाते हैं उसी तरह क्रूर और पाप ग्रह भी दांव दे जाते हैं वक्त पर काम नहीं आते। ये आपके अपने संबंधों की

सामर्थ्य पर निर्भर करता है कि कहां तक आप उनसे अपनी इच्छानुसार काम करवा लेते हैं। धोखा खाते समय ये सोचकर न पछताइयेगा कि निवेदन का मार्ग ही अच्छा था व्यर्थ ही बराबरी का मार्ग अपनाया। ये सोचते ही आप कहीं के न बचेंगे। मित्रवत् संबंध तो समाप्त होंगे ही और निवेदन के बन न सकेंगे। फिर निवेदन के पचीस प्रतिशत मामले ही ठीक होते है। बाकी पर सुनवायी नहीं और अपील की गुंजाइश नहीं। शंका का कोई समाधान नहीं... किसी तरह का कोई स्पष्ट कारण नहीं। पुनः निवेदन के अनुष्ठान दोहराइये और तब तक करते जाइये जब तक अभीष्ट सिद्ध न हो जाये। बराबर की मात्रा में बहुत कुछ तो आप स्वयं समझ जायेंगे। ग्रह यदि मनोवांछित दृष्टि नहीं दे रहे हैं तो कारण स्पष्ट हो जायेंगे और आप यदि उत्तेजित नहीं हैं तो सब कुछ समझ भी जायेंगे। विशेष वक्रिम स्थिति में तुरन्त अपेक्षित फल नहीं देते मगर थोड़ा अनुकूल स्थिति आने पर वह संतुष्ट कर ही देते हैं।

तीसरी स्थिति साधना की उच्च स्थिति है। उच्च कोटि के साधक ग्रहों को आदेश देते हैं। और ग्रह उन आदेशों का पालन करने के लिये बाध्य होते हैं। सम-भाव से ग्रहों से तादात्म्य बनाकर चलने वाला साधक जब इष्ट के चरणों के समीप पहुंच जाता है। जब इष्ट उसकी सुनने लगते हैं तब उसके स्वर प्रकृति में आदेश से बरसते हैं। उसकी इच्छा इष्ट की इच्छा होती है। उसकी इच्छा का पालन कर प्रकृति-तत्व हर्षित और आनन्दित होता है। ईश्वर की साधना में लीन रहने वाले ऐसे उच्च कोटि के साधक किसी जागतिक क्षुद्र स्वार्थ से प्रेरित होकर कुछ नहीं करते। कभी विशेष करुणावश या ईश्वरीय प्रेरणावश ईश्वरीय विधान को संचालित करने के लिये वे सक्रिय होते हैं। सामान्य व्यक्ति का ऐसे सिद्ध पुरुषों तक पहुंचना मुश्किल है और अगर वे मिल भी जाय तो उन्हें समझ पाना सामान्य व्यक्ति के लिये असंभव ही है।

■ ■ ■

हत्यारिन माँ

१०-१२ वर्ष पहले की बात है। मै प्रतिदिन की भांति चाय की दुकान मैं बैठा था। ए०जी० ऑफिस चौराहे पर बोर्ड ऑफ रेवेन्यू कार्यालय वाले पूरब-दक्षिण कोने में पांडे जी की चाय की दुकान है। उन दिनों मैं वही बैठता था। मित्रों से हंसी-मज़ाक चल रहा था। शहर के मिलने वाले मुझसे मिलने यहीं आ जाते थे। रसूलाबाद (मेरा घर) तो शहर से दूर एक किनारा है। मैं भी लोगों की सुविधा के लिए वहीं बुला लिया करता था। उस दिन लगभग १२.३० बजे होंगे। सामने एक रिक्शा रुका। उसमें से एक लड़की उतरी। इकहरे बदन की अच्छे नाक-नक्श की वह सुन्दर युवती थी। उसने साड़ी बहुत सलीके से पहन रखी थी। आज के वस्त्रहीन युग में साड़ी का पल्लू उसने कुछ इस तरह लपेट रखा था कि उसका पूरा शरीर ढक गया था। बड़ी शालीन और सौम्य लग रही थी। भारतीय संस्कृति के परिधानों में लिपटी और संस्कारों में संवरी वह लड़की निस्संदेह प्रथम दृष्टि में मुझे अच्छी लगी। मेरे पास आकर मुझसे उसने पूछा, 'यहां सुशील भाई कहाँ बैठते हैं?'

मैंने उसे बैठाया और पूछा, 'तुम कौन हो?' उसने अपना नाम बताया 'किसलिए मिलना चाहती हो?' मैंने उससे पूछा।

'क्या आप ही सुशील भाई हैं?' उसने पूछा, मैंने सहमति में सिर हिलाया। उसने कहा, ''मैंने सुना है कि आप सम्मोहन जानते हैं। सम्मोहित करके मुझे सुला दें....। महीनों से मुझे नींद नहीं आ रही।'

'तुम्हें नींद क्यों नहीं आ रही?' मैंने पूछा, 'एक माह पूर्व मेरा बच्चा मर गया। उसकी मृत्यु के बाद से मुझे ठीक से नींद नहीं आयी।' उसने सामान्य स्वर में कहा।

'बच्चा कितना बड़ा था?' मैंने पूछा

'तीन माह का।' लड़की ने सामान्य स्वर में उत्तर दिया। विचित्र बात थी। जिस पुत्र की मृत्यु की पीड़ा ने उसकी रातों की नींद हर ली उस पुत्र की मृत्यु की चर्चा में वह पूर्णतया सामान्य थी। 'तुम्हें मेरा पता किसने बताया?' मैंने पुनः पूछा 'डॉ० टण्डन के यहाँ मुझे किसी ने आप के बारे में बताया।' उसने कहना प्रारंभ किया, 'बच्चे की मृत्यु के बाद जब मुझे निद्रा की समस्या हुई तो लोगों ने डॉ० टण्डन (मनोरोग चिकित्सक) के पास जाने की सलाह दी। मैं उन्हीं का इलाज कर रही हूँ। वे मुझे नशीली गोलियाँ देते हैं। दवाओं के नशें में धुत्त हो मैं शिथिल तो हो जाती हैं, मगर नींद नहीं आती। कल मेरी दोस्त घर आयी थी उसने बताया कि यदि कोई सम्मोहित करके अवचेतन मन में पड़ी दुख की स्मृति को पोंछ दे तो नींद सामान्य ढंग से आने लगेगी। आज मैंने डॉ० टण्डन से कहा कि वो सम्मोहित करके मुझे ठीक कर दें। मगर उन्होंने मेरी बात अनसुनी करके दवाई लिख दी और नियम से खाने की बात पर अधिक बल दिया। मैं निराश होकर बाहर आयी। खड़ी-खड़ी सोच ही रही थी कि किसी अनजान आदमी ने आपका पता बताया। आप सम्मोहित करके मुझे ठीक कर दें।

मैंने उसे समझाना चाहा मगर वो सम्मोहन की जिद पर अड़ी रही। मेरे अन्य मित्र तो उठकर चले गये थे मगर मुरारी लाल अग्रवाल पास की बेन्च पर बैठकर सारी बात सुन रहे थे। उन्होंने मुझे उस लड़की को भगाने का इशारा किया। मुझे भी वो लड़की अटपटी लग रही थी। मगर इस तरह एकदम भगा देना मेरे स्वभाव में नहीं है। इसलिए हिचक रहा था।

'तुम्हारे पति कहाँ हैं?' मैंने पूछा

'ड्यूटी पर।' उसने निर्विकार भाव से उत्तर दिया।

'तुम्हारे पति ड्यूटी पर हैं, और तुम घर में अकेली हो ऐसे में तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे साथ चलकर तुम्हें हिप्नोटाइज करूँ।' कहते हुए मैं सोच रहा था कि शायद डरेगी।

'जी हाँ' उसने आश्चर्य का भाव प्रकट करते हुए कहा, 'आपको इसमें शर्माना क्या है?'

या तो लड़की नासमझ है या फिर और कोई बात है। मुरारी लाल बार-बार उठने का इशारा कर रहे थे। उनका सौ फीसदी मत यही था कि लड़की किसी चक्कर में उलझाना चाहती है। वो नही चाहते थे (स्नेहवश) कि मैं इस तरह के चक्करों में उलझूं। अब तक मैं भी निर्णय ले चुका था, 'तुम, अपने पति को लेकर आओ तब मै कुछ सोचूंगा।'

उस लड़की को निराशा हुयी फिर भी पक्का करने के इरादे से बोली, 'अगर मैं पति के साथ आऊँगी तो आप मेरे घर चलेंगे न।'

'चला चलूँगा'। मैंने उसे दिलासा दी।

'ठीक है। मैं परसों इसी समय पति के साथ आऊँगी।' उसने दृढ़ता से कहा और चली गयी। मुरारी लाल अग्रवाल का कहना था कि अब वो कभी नहीं आयेगी। मुरारी व्यावहारिक और व्यावसायिक आदमी हैं। व्यर्थ ही मामलों में उलझना उनकी प्रकृति के विरुद्ध है।

ऊँची आवाज में बोलने के कारण और लोगों से छेड़खानी करने के कारण महालेखाकार कार्यालय के अधिकांश कर्मचारी उन्हें जानते हैं।

तीसरे दिन ठीक १२.३० बजे वो लड़की (आगे उसे हम रश्मि कहेंगे) अपने पति के साथ आ गयी। उन्हें आते देखकर मुरारी कहने लगे, 'जो बात करनी हो एइठन कर लेव... ओकरे घर न जायेव।' मैंने पति-पत्नी को बैठाया। पति केन्द्रीय कार्यालय में अच्छे पद पर कार्यरत था। उसे अवकाश की समस्या थी। मुझसे मिलने के लिए उसने थोड़े समय का अवकाश लिया था। पत्नी की समस्या से वह बहुत परेशान था। मैंने उससे पूछा, 'आप क्या सोचते हैं?' रश्मि कैसे ठीक होगी?' उसने दुख के साथ कहा, 'मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। जो जैसा कहता है मैं करता हूँ। लोगों ने डॉ० टण्डन का नाम बताया हमने उनका इलाज किया। अब ये आप के बारे में बता रही हैं। आप जो कहें हम करेंगे।'

मैंने खुलकर कहा, 'रश्मि तो सम्मोहन के लिए जिद कर रही है।'

पति ने पूर्ण समर्पण किया, 'जैसा आप उचित समझें.... करें.... बस किसी तरह ठीक कर दें।'

मुरारी लगातार झंझट में न उलझने के लिए कोंच रहे थे। मैंने भी टालना चाहा मगर फिर रश्मि का बेबाक प्रहार, 'आपने उस दिन साथ चलने का वादा किया था।' अब मैं साथ जाने को उठ खड़ा हुआ। पास ही एक कालोनी में वे लोग रहते थे। दो कमरे का सरकारी आवास था। एक डायनिंग-कम-ड्राइंग रूम से लगा हुआ रसोईघर था और दूसरी ओर लैट्रिन-बाथरूम। हम लोग बेडरूम में डबल-बेड पर बैठ गये। सब कुछ सामान्य होते हुए भी मुझे कुछ अजीब सा लग रहा था। कौन सी प्रक्रिया अपनायी जाय? प्रश्न मेरे मन को मथ रहा था। तार्किक दृष्टि से सब कुछ ठीक होने पर भी मेरा मन बच्चे की मृत्यु का दुःख अनिन्द्रा का क्रारण नहीं स्वीकार कर पा रहा था। रश्मि के हाव-भाव से कहीं कोई दुख, वेदना या गहरा ग़म नहीं प्रकट होता था। फिर अनिन्द्रा का कारण क्या था?

डबल बेड के एक कोने पर पति को बैठाकर मैंने रश्मि को लिटा दिया। कई प्रयोग किये मगर, अपेक्षित फल नहीं मिल पा रहा था। बार-बार असफल होते रहने से मेरी उलझन बढ़ती जा रही थी। बीच-बीच में उसका पति भी व्यवधान डाल देता था। वह अपनी ही धुन में था। कार्यालय से एक घंटे का अवकाश लेकर आया था। कार्यालय जाने को व्यग्र था। जब चौथी बार उसने कहा, 'भाई साहब। मेरा यहाँ क्या काम... मुझे कार्यालय जाने दीजिए। मैं झल्ला गया बोला, 'तुम्हारी उपस्थिति ही काम कर रही है। सामान्यतया किसी अन्य की उपस्थिति बाधक होती है और मैं किसी को रहने भी नहीं देता, मगर ये विशेष परिस्थिति है। तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारी पत्नी का अवचेतन मन तनावग्रस्त हो जायेगा। मेरे काम के लिए आवश्यक है कि उसका चेतन और अवचेतन मन तनाव रहित हो। मेरे डाँटने पर वह शान्त होकर बैठ गया।

लगभग ४-५ मिनट तक मैं प्रयास करता रहा। कई प्रयोग किये मगर सही-सही निष्कर्ष नहीं निकल रहे थे। जाने क्या बात थी कि बीच में कुछ

गड़बड़ हो जाती थी। मैं बार-बार गड़बड़ी जानने की चेष्टा करता मगर कुछ स्पष्ट नहीं हो पा रहा था। रश्मि भी थक गयी थी। मैंने अपना काम रोक दिया। पत्नी ने पति को चाय बनाने केलिए कहा और उठकर बैठ गयी। पति के अन्दर जाने के बाद सामान्य बातें होने लगीं। तुम्हारा मायका कहाँ है... कितने भाई बहन हो.... पिता क्या करते हैं... कितनी पढ़ी हो... इस मकान में कब से आयी... शादी कब हुई..... इसी क्रम में मेरे मुंह से निकला 'वो बच्चा कैसे मरा?' प्रति उत्तर में रश्मि मुस्करा दी। कुटिल क्रूर भाव क्षणांश में उसकी आंखों में कौंध गया। बच्चे की मृत्यु के प्रश्न पर लड़की की मुस्कराहट...! मैंने अपना प्रश्न दोहराया। रश्मि ने मौन रहकर सर नीचे झुका लिया। अब समझ में आ रहा था कि कोई प्रयोग सफल क्यों नहीं हुआ। मैं तो उसे सामान्य समझकर क्रियाशील था मगर वो तो असामान्य थी। इतनी छोटी सी बात मेरी समझ में नहीं आयी। स्वयं पर बहुत झुंझलाहट आयी, व्यर्थ ही समय बरबाद हुआ। मैंने डॉटकर कहा 'सच-सच बताओ...' बच्चे की मृत्यु कैसे हुई? इसी समय पति ने चाय लेकर कमरे में प्रवेश किया। रश्मि ने सर उठाकर पति की ओर देखा। मेरे पुनः प्रश्न पूछने पर पति ने उससे कहा, 'इन्हें बता दो... इनसे कोई डर नहीं है।'

रश्मि ने सहज भाव से मेरी ओर मुख किया और शान्त स्वर में बोली, 'मैंने मार डाला।'

मैं अन्दर तक दहल गया। माँ के हाँथों अपने बच्चे की हत्या! वह भी जायज बच्चे की! किस्से कहानियों में भी ऐसी घटना नहीं मिलेगी। किसी दार्शनिक ने ठीक ही कहा है–'सत्य कल्पना से अधिक अजीब होता है।'

अपनी वाणी की कठोरता बरकरार रखते हुए और ऊपर से पूर्णतया सामान्य बनते हुए मैंने आगे प्रश्न किया, 'कैसे मारा?'

रश्मि ने सर नीचे झुका लिया।

मैंने व्यग्रता से प्रश्न दोहराया, 'बताओ न! कैसे मारा? गला दबा कर?'

रश्मि ने मुख ऊपर उठाया। एक हिंसा भाव उसकी आंखों में निमिष मात्र को चमका, फिर ठंडे शान्त स्वर में बोली, 'गला घोंट दिया।'

'हाँथ से गला दबा दिया?' मैने पूछा 'नहीं! मुंह में हांथ डालकर अंगूठे से बच्चे की श्वास नली दबा दी।' उसकी आवाज में न तो कोई ग़म, न अपराध, न किसी तरह का अन्य कोई भाव था। ऐसा लग रहा था जैसे किसी साधारण घटना की चर्चा हो रही हो। पति रोने लगा था।

'बच्चा छटपटाया था?' मैंने आगे प्रश्न किया उसने ठंडी आवाज में पूर्ववत् उत्तर दिया, 'हाँ!' थोड़ी देर तड़पा था।'

'क्यों मारा तुमने?' मेरा प्रश्न था।

वह पति की ओर इशारा करते हुए बोली, 'ये उसे बहुत चाहते थे। मेरी ओर ध्यान नहीं देते थे।'

'बस इतनी सी बात पर तुमने बच्चे की हत्या कर दी?' मैं चीखा।

'बच्चा रात में विघ्न भी तो डालता था।' उसने शिकायती लहजे में कहा।

'जब तुमने बच्चे को मारा उस समय ये (पति) कहाँ थे?' पति पहले से ही सिसक रहा था, मेरे प्रश्न पर उसकी रुलाई फूट पड़ी, रोते हुए बोला, 'मैं ड्राईग रूप में कार्यालय की फाइल देख रहा था। ये इसी जगह (जहां इस समय बैठी थी) लेटी थी। बच्चा इसके बगल में लेटा था। रह-रह कर बच्चे की नींद उचट जाती थी। एक आध बार ड्राईग रूप से ही मैं बोला था कि दूध पिला दो बच्चा पीते-पीते सो जायेगा। मेरा ध्यान फाइल में ही उलझा था तभी इसने बुलाया... मेरे आने के पहले ही बच्चा मर चुका था... मै क्या करता, भाई साहब! मेरा पहला लड़का....।' जाने क्या-क्या प्रलाप वो करता रहा, दुःख से उसका हृदय फटा जा रहा था।

इसी समय बाहर से जोर-जोर से आवाज आने लगी, 'सुशील...सुशील... सुशील... सुशील भाई!' ये हैं मेरे मित्र मुरारी लाल अग्रवाल... जो आवाज देते हैं तो देते ही चले जाते हैं, प्रति उत्तर की प्रतीक्षा करने का धैर्य नहीं है उनके पास। देर होने के कारण चिन्तित हो मुझे ढूंढ़ने चले आये थे। मैंने आवाज देकर उन्हें ठहरने को कहा। रश्मि और उसके पति को तीसरे दिन शाम को ७ बजे घर पर बुलाया। फिर मुरारी के साथ वापस कार्यालय आ

गया। यहाँ यादव की चाय की दुकान पर यश मालवीय, अशोक संड, ओ० डी० सिन्हा, जमील व अन्य लोग बैठे थे।

इतनी बड़ी घटना मैं पचा नहीं पा रहा था। सबको बताया। जैसे सांप सूंघ गया हो। किसी को विश्वास नहीं हो रहा था। 'कुपुत्रों जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।' के संस्कार वाली हमारी मित्र-मंडली इस सत्य को उदरस्थ नही कर पा रही थी पर अविश्वास की कोई गुंजाइश न थी। पात्र, स्थान, घटना के साक्षी थे सभी लोग।

घर आकर पत्नी को बताया। उसे भी विश्वास नहीं हुआ कहने लगी 'आप हमेशा अजीबोगरीब बाते करते हैं।... अब इस बात को तो मैं नही मानूँगी कि माँ अपने दुधमुहे बच्चे की स्वयं हत्या कर दे।'

मैंने कहा 'मैं क्या करूँ मेरे इर्द-गिर्द की दुनिया ही सामान्य नहीं है। जिस जगत में जिन तथ्यों के बीच जी रहा हूँ वो सामान्य जगत के तथ्यों से भिन्न है इसलिए मेरी बातें सदैव अजीब विचित्र किन्तु सत्य लगती हैं। परसों वो दंपति शाम ७ बजे घर आयेंगे। अपनी आँखों से उस लड़की को देख लेना और कानों से उसकी बात सुन लेना तब मानना।'

शाम को डॉ० बाल कृष्ण मालवीय के यहॉ बैठक जमी। बुद्धिजीवियों के सामने यह घटना रखी गयी। तरह-तरह से इस घटना की मीमांसा हुयी। इतिहास के अनेक उदाहरणों पर विचार-विमर्श हुआ। माँ द्वारा अबोध बालक की हत्या का प्रकरण सभी के हृदय को झकझोर रहा था। हत्या का औचित्य भी स्पष्ट न था। कारण में कोई दम नहीं था। बिना किसी ठोस कारण के इतनी बड़ी घटना घट गयी थी श्री ओ० डी० सिन्हा का कहना था कि लड़की के दिमाग में कोई गड़बड़ी थी और उसे किसी अच्छे मनोरोग चिकित्सक को दिखाना चाहिए। मैने बताया कि लड़की डॉ० टण्डन के इलाज में थी। उसे किसी अच्छे अस्पताल में जहाँ आधुनिक जांच की समस्त सुविधायें उपलब्ध हों भेजा जाना चाहिए। मुझसे नहीं रहा गया। मैंने कहा कि यह कार्य किसी अन्य शक्ति का है। किसी अन्य शक्ति के सम्मोहन में उसने यह कार्य किया है और उसी सम्मोहन के कारण वह अभी तक अपने बच्चे की

मृत्यु का दर्द नहीं महसूस कर पा रही है। सम्मोहन के परिणामस्वरूप उसके चेतन, अवचेतन और अचेतन का आपसी तालमेल गड़बड़ा गया है। इसलिए उसे नींद नहीं आती। नींद के न आने से भूख मर गयी थी। भूख मर जाने से खाना नहीं खा रही थी। खाना न खाने से दुर्बलता बढ़ती जा रही थी। मेरे किसी अन्य शक्ति के निष्कर्ष का बुद्धिजीवियों ने विरोध किया। ओ० डी० सिन्हा का कथन था 'ये सीजोक्रीनिया का केस है।' बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के मनोरोग विभाग में उसे दिखाया जाना चाहिए। आप ख्वामख्वाह उस पर रियाज न करिये।' अन्दर से न स्वीकारते हुए भी मैंने गोष्ठी के इस निष्कर्ष का पालन करने का निर्णय लिया।

तीसरे दिन शाम को ठीक सात बजे रश्मि अपने पति के साथ मेरे घर आयी। कामिनी (पत्नी) को बहुत उत्सुकता थी। घर में ऐसी हलचल थी जैसे कोई अजूबा आने वाला हो। मैने उन लोगों को ड्राइंग रूप में बैठाया। कामिनी को बुलाकर परिचय कराया। सहज भाव से इधर-उधर की बातें होती रही। कामिनी उसके मुँह से स्वीकारोक्ति सुनना चाहती थी। सीधे प्रश्न करने से भी हिचक रही थीं। मैंने उनकी उलझन दूर की। घुमा-फिरा कर इस ढंग से बातें की कि रश्मि ने तथ्य स्वयं अपने मुख से कह दिये। घर भर के सदस्यों के मन की उत्तेजित अवस्था, सारी सीमायें पार कर गयी थी। पहली बार किसी हत्यारिन माँ को देख रहे थे। उसके सरल निर्दोष मुख को देखकर उसके दोष पर विश्वास करना असंभव सा था। कामिनी का पूछना था इतनी सीधी मृदुभाषिणी लड़की हत्या कैसे कर सकती है– वह भी अपने पुत्र की। कैसे उसका गला दबा सकी? पुत्र के तड़पने पर उसका हाँथ कांपा क्यों नहीं? इतनी बड़ी घटना के बाद भी ये सामान्य क्यों है?

उन्हें चाय पिलाया। थोड़ी देर बातें करता रहा। पति से हाल-चाल पूछता रहा। बेचारा अन्दर से भयभीत था। वह पत्नी से हदस गया था। सन्तान से विशेष स्नेह था। उसकी मृत्यु ने बहुत दुःख दिया था। पत्नी की बीमारी को लेकर भी वह चिन्तित था। इधर-उधर की ढेरों बातचीत के बाद मैंने उन्हें बनारस जाने की सलाह दी। उनसे कहा कि इलाज के पूर्व विस्तृत

जांच अनिवार्य है। बी० एच० यू० जाकर जांच करवा लें और वहाँ से किसी स्पेशिलिष्ट का इलाज कुछ दिन करके देख लें। मैं तो हूँ ही। वे लोग मेरी बात मानकर चले गये।

लगभग दो माह बाद एक दिन शाम को ७ बजे मेरे घर का दरवाजा खटका। खोला तो रश्मि अपने पति के साथ थी। मैं तो उसे पहचान नहीं पा रहा था। चेहरा भर गया था। इकहरी स्लिम काया फूलकर मोटी हो गयी थी। चेहरे पर अजीब किस्म के काले-काले धब्बे नज़र आ रहे थे। लावण्यमय मुख कुरूप हो गया था। कोमल स्निग्ध त्वचा की कांति समाप्त हो गयी थी। दो माह पहले यदि मैने उसे न देखा होता तो आज उसे देख कर पहले की रश्मि की कल्पना असंभव थी। हठात् मेरे मुंह से निकला 'अरे ये क्या हो गया?'

'ऐलोपैथी दवा का प्रभाव है' उसका पति सपाट स्वर में बोला, 'डॉक्टर कहते हैं कि, धीरे-धीरे शरीर पूर्ववत् हो जायेगा।'

खाक कहते हैं डाक्टर, मेरा मन क्रोध से उबला बीमारी तो ठीक कर नहीं सकते शरीर अलग खराब कर दिया, 'अब तबियत कैसी है?' 'तबियत तो वैसी ही है' रश्मि हँसते हुए बोली, नींद वैसे ही नहीं आती... भूख नहीं लगती... लगभग सब कुछ वैसा ही है सिवा शरीर के....।

मेरा अन्तर मन आहत हुआ। लगा कि उसकी वर्तमान अवस्था का जिम्मेदार मैं ही हूँ। मेरे कहने पर ही तो बी.एच.यू. गयी जहाँ डॉक्टरों ने उसके शरीर को इस स्थिति में कर दिया। ऐलोपैथी की दवाइयों की सीमा तो तुम जानते हो। स्नायुतंत्र और दिमाग को किसी भी बीमारी का इलाज उनके पास नहीं है। नशीली गोलियाँ देने के अलावा कोई विकल्प नहीं। आवश्यकता पड़ने पर एन्टीबायटिक देने को विवश हैं। एन्टीबायटिक के कुप्रभाव को जानते हुए भी उसके प्रयोग की बाध्यता है। आवश्यक बुराइयों की तरह ये दवाये उपयोग में लायी जाती हैं। सोचते-सोचते मुझे ओ० डी० सिन्हा और डॉ. बाल कृष्ण मालवीय आदि बुद्धिजीवी और विज्ञानवेत्ताओं पर भी क्रोध आया–देखें इस लड़की को, यदि सारा पुस्तकीय दर्शन और

प्रयोगशाला का ज्ञान लगा कर इसे पूर्ववत कर सकें तो जानूँ। गोष्ठी में तर्क करके सैद्धान्तिक रूप से निष्कर्ष निकालना अलग बात है और व्यावहारिक जगत में समस्याओं से जूझना भिन्न बात है। अपनी धारणा के अनुरूप तथ्यों पर विचार-विमर्श कर निष्कर्ष निकालना एक बात है और तथ्यों के साथ जूझकर लड़ते हुए निकले हुए निष्कर्षों को धारण कर आगे बढ़ना भिन्न बात है। गलती मेरी ही थी जो इस विषय पर दूसरों की राय से चला। उस दिन के बाद से इस तरह की वैचारिक गोष्ठियों पर से मेरी आस्था उठ गयी और मैं इस तरह की बातों की चर्चा करने में संयम बरतने लगा।

विचारों का अन्त हुआ तो सारी झुंझलाहट क्रोध, ग्लानि वोध उस दंपत्ति के लिए गहरी करुणा और स्नेह में बदल चुके थे। आत्मीय भाव से कंधे पर हाथ रख उन्हें घर में बैठाया। थोड़ी देर बाद आवश्यक व्यवस्था करके रश्मि को पूजन कक्ष में ले गया। मैंने जो समझा था वही सच निकला। किसी रात वह सज-धज कर सजीव पीपल के वृक्ष के नीचे से गुजरी थी। पीपल के पेड़ में रहने वाला बरम उस पर मोहित हो गया। बरम उसके साथ सदैव रहना चाहता था। पुत्र को उसने रश्मि के माध्यम से मार दिया था। अब पति की बारी थी। पति का आत्मबल भी लगभग टूट ही चुका था। यदा-कदा पत्नी के असाधारण क्रिया-कलापों से उपजा भय धीरे-धीरे उसके हृदय पर आधिपत्य जमाता चला जा रहा था। अकेले में बात करने पर बेचारा रोने लगा। जिस पत्नी के आगोश में उसे दिन रात का होश नहीं रहता था उसके ख्याल से भी उसे दहशत होने लगी थी। उसका कहना था कि जीवन रेगिस्तान हो गया। अब जीने का मन नहीं करता। मन करता है कि विष खाकर मैं भी प्राण दे दूँ।

बहरहाल कुछ दिन यदि और बीत जाते तो फिर लड़की ठीक न हो पाती। समय थोड़ा अधिक लगा मगर सब कुछ ठीक हो गया। रश्मि का शरीर पहले जैसा तो नहीं मगर कुछ कुछ वैसा ही होने लगा था। कुछ माह पूजा करके मानसिक रूप से वह पूर्णतया मुक्त और स्वस्थ हो गयी।

घटना के लगभग दो-ढाई वर्ष बाद एक दिन डेढ़ बजे ए.जी. ऑफिस

के सामने की सड़क पर मैं अपनी मित्र मंडली के साथ गुजर रहा था कि एक रिक्शा रुका और युवती आंचल संभालते हुए उतरी। मेरे पहचानने के पहले ही नीचे झुककर उसने मेरे पैर छुए। जब सीधी खड़ी हुयी तो मैंने पहचाना कि वह रश्मि थी। हँसते हुए बोली, 'आपने कहा था न कि बच्चा होने पर तुम पूरी तरह ठीक हो जाओगी.... मेरा लड़का ६ माह का हो गया है.... किसी दिन दर्शन दीजिए....।

"हाँ हाँ आऊंगा...?" कहते हुए हृदय के हर्ष के आवेग को हृदय में ही दबाते हुए मैं आगे बढ़ गया।

■ ■ ■

जय हो महाकाल!

'भाविहि मेटि सकहिं त्रिपुरारी'

गोस्वामी तुलसीदास का उक्त कथन पूर्णतया सत्य है। त्रिपुरारि यानि शिवशंकर विधि के विधान को परिवर्तित कर सकते हैं। विधि का विधान ब्रह्मा लिखते हैं। मनुष्य का भाग्य लिखने के बाद ब्रह्माजी स्वयं इसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। एक बार जो लिख दिया... लिख दिया। कोई देवी-देवता इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते। देवाधिदेव महादेव शिवशंकर ही इसमें परिवर्तन करने की शक्ति रखते हैं। जिसके भाग्य में निर्धनता लिखी है, उसे शिवशंकर अपनी कृपा से अपार धन दे देते हैं। जिनके भाग्य में सन्तान सुख नहीं है, उन्हें शिव सन्तान दे देते हैं। शिव अपनी शक्ति, सामर्थ्य से विधि विधान में कोई भी उलट-फेर कर सकते हैं। जैसे भारतीय संविधान में मृत्युदंड पाये हुए अपराधी को क्षमा दान करने का अधिकार राष्ट्रपति के पास सुरक्षित है। उसी प्रकार किसी भी कर्मदंड के फल को परिवर्तित करने की सामर्थ्य भोले शंकर के पास है।

ये बात अलग है कि शिव की कृपा पाना बहुत मुश्किल है। इनकी कृपा पाने का कोई निश्चित अनुष्ठान नहीं है। सभी देवी-देवताओं के लिए अनुष्ठान निर्धारित हैं। यदि विधि विधान से अनुष्ठान संपादित किये जायें तो संबंधित देवी या देवता आने के लिए बाध्य हैं। किन्तु शिवशंकर के आवाहन हेतु कोई यज्ञ, कोई अनुष्ठान निश्चित नहीं है। चाहे जितने यज्ञ अनुष्ठान करो शिव पर कोई असर नहीं पड़ता। सैकड़ों वर्ष तप-जप करते रहो फिर भी शिव कृपालु नहीं होते और कभी मात्र १ लोटा जल चढ़ाने से ही प्रसन्न होकर प्रगट हो जाते हैं। इसीलिये उन्हें भोलेनाथ कहा जाता है। चाहें तो

क्षण भर में आ जायं और न चाहें तो जीवन भर तपस्या करते रहिए, दूर-दूर तक उनकी कृपा का कोई लक्षण नहीं मिलेगा।

तुलसी की उक्ति मेरे जीवन में बार-बार चरितार्थ हुई है। शिवशंकर की कृपा के चमत्कार मेरे अनुभव में कई बार उतरे हैं। मेरे पास आने वाले... मेरे समीप रहने वालों के जीवन में हुई चमत्कारिक घटनायें शिवशंकर की अनवरत बरसती हुई कृपा की प्रमाण हैं। शिव की कृपा से दिया गया एक चम्मच जल भी अमृत हो जाता है। शिव की अनुकम्पा से दी गयी कोई भी वस्तु संजीवनी बन जाती है। शिव की प्रेरणा से दी गयी भभूत रामबाण हो जाती है। माध्यम निमित्त है। कृपा ही प्रमुख है। शिव के अनुग्रह से घटी ब्लड-कैंसर की सत्य घटना, जिसके सभी नाम पात्र सत्य हैं, का उल्लेख कर रहा हूँ।

शरद कुमार माथुर मेरे मित्र हैं। वे महालेखाकार कार्यालय, इलाहाबाद में वरिष्ठ संप्रेक्षक हैं। पुराना बैहराना में श्री बनवारी लाल (डायरेक्टर प्रयाग संगीत समिति) के घर के समीप इनका घर है। इनके पिता श्री एल.बी. माथुर हाईकोर्ट इलाहाबाद से अवकाश मुक्त हुए हैं। शरद के दो छोटे भाई अजय और सुनील हैं। एक बड़े भाई बेबी दा उस समय यूनियन कार्बाइड भोपाल में कार्यरत थे। बड़ी बहन सुधा दीदी है। शरद का फोन नं. ६१२६६५ है।

नवम्बर १९८६ की बात है। किसी माध्यम से मुझे ज्ञात हुआ कि शरद की मां को ब्लड कैंसर हो गया है। दिल पर गहरा आघात लगा। शरद की मां वास्तव में मां थीं। वात्सल्य से सराबोर... दया ममता जैसे कूट-कूट कर भरी हो। उनकी आँखों से स्नेह टपकता था। उनकी वाणी से ममत्व छलकता था। ईश्वर के प्रति आस्थावान् थीं। निश्छल, सरल मन की पूजा ने उन्हें पवित्र बना दिया था। सृजन का तत्व प्रकृति की मूल्यवान धरोहर है। स्त्री पूज्यनीया है, क्योंकि वह जननी है... वही जन्म दे सकती है। मनुष्य जाति के उत्तरोत्तर विकास का आधार स्त्री है। अनवरत जल वृष्टि हो... निरतंर बीजारोपण हो किन्तु धरा अस्वीकार कर दे तो सब कुछ व्यर्थ हो जायेगा।

सारा परिश्रम अर्थहीन हो जायेगा। यदि मातृत्व का सर्जनात्मक तत्व उदर में बीज न स्वीकारे तो मानव जाति का प्रवाह ठहर जायेगा। स्त्री जाति का समाज में विशेष सम्मान है क्योंकि वह मां है। बच्चे को जन्म देना मात्र शारीरिक क्रिया नहीं है, संवेदन के तल पर यह प्रकृति की महत्वपूर्ण घटना है। स्त्री के विभिन्न रूपों में मातृत्व की गरिमा उसे जगत-जननी जगदम्बे का प्रतिनिधित्व देती है। दुखद है कि आज स्त्रियों में मातृत्व का अनुपात कम होता जा रहा है। आधुनिक युग में,... स्त्री स्वतंत्रता की लहर में, स्त्रियां मातृत्व के गौरव को अभिशाप समझने लगी हैं। पुत्र को जन्म देकर भी अपना दूध नहीं पिलातीं। कहती है कि बच्चे को दूध पिलाने से फिगर खराब हो जायेगा। बच्चों को मां नहीं.... नौकरानियाँ पालती हैं। दो बच्चों के मां होने के बाद भी वे नवविवाहिता समझी जाने पर गौरवान्वित होती हैं। मैने अक्सर बच्चों की मां को इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त करते सुना है कि–'फलानी स्त्री कह रही थी आप तो अभी इतनी कमसिन लगती हैं कि जैसे आपकी शादी ही न हुई हो... आपका मां होना तो कोई सोच भी नहीं सकता' कहते कहते स्त्री की आँखों में कंवारेपन का चांचल्य विहंसने लगता है। ऐसी माताएँ पुत्र के बड़े होने पर जब अपनी ममता और त्याग की दुहाई देकर उसे अपने अनुसार जीवन में चलाने का प्रयास करती हैं तो मुझे बहुत अजीब लगता है।

शरद की मां पर आधुनिकता की कोई छाप नहीं थी। परंपरागत भारतीय संस्कारों से ओत-प्रोत वे एक आदर्श महिला थीं। उनके हाव-भाव से स्नेह छलकता था। जब कभी मैं शरद के घर जाता... दो मिनट को ही सही... वे आती जरूर थीं। हाल-चाल पूछतीं...। बहू बच्चों के बारे में पूछती और फिर संतुष्ट होकर चली जातीं। उनकी अपनत्व भरी वाणी और आत्मीय व्यवहार दिल की गहराइयो में कहीं छू जाते। उनके वह दो मिनट के दो-चार वाक्य मेरे लिये क्या अर्थ रखते थे.... आज शरद भी जानेगा।

एक दिन शरद ने बड़े दुख से बताया कि–'मम्मी की तबियत बहुत खराब है। उन्हें ब्लड कैंसर हो गया है।' कहते-कहते शरद की आँखों में आँसू भर

आये। पता तो मुझे पहले से था मगर पूरा विश्वास नहीं था। सोचता था कि शायद सूचना गलत हो किन्तु आज शरद के मुख से सुनने के बाद सन्देह की कोई गुंजाइश न बची। उसके बाद मेरे मन में यही बात घूमती रही। दिन भर शरीर व्यावहारिक तल पर बरतता रहा मगर मन में ब्लड कैंसर की बात घूमती रही। रात को अपने शिव-मन्दिर में पूजा करते समय बांध टूट ही गया, 'हे शिवशंकर! ये क्या हो गया? सीधी सादी सरल महिला को कैंसर कैसे हो गया? औघड़बाबा! तुम्हारी लीला भी विचित्र है! अच्छे लोगों को कष्ट देते हो और दुष्टों को ऐश कराते हो। ये कैसा न्याय है? शरद की मां ने तो कभी किसी को कोई कष्ट नहीं दिया। सब पर समान भाव से ममता लुटाती हैं। दान पुण्य, धरम-करम सब कुछ तो कर रही थीं। फिर ये विस्फोटक रोग क्यों? ब्लड-कैंसर की पीड़ा कैसे सहन कर पायेंगी वो सीधी सरल मां? जगत का हलाहल अपने कंठ में धारण करने वाले नीलकंठ ! तुम्हें पुनः गरल पान करना होगा। मैं शिव-मन्दिर में बिलबिलाया–'तुम्हें उसके विष को पीना होगा शेषधर!'

कहीं मन से आवाज उठी–'वह तुम्हारी क्या लगती है?'

'मां मां होती है गंगाधर!' मैंने तुरन्त उत्तर दिया, 'शरद की मां मेरी भी तो मां हुई। फिर प्रश्न मां का ही नहीं शुभत्व का भी है। अच्छे लोगों के साथ ऐसी दुर्घटना देखकर लोगों का सत्कर्मों से, शुभत्व से, धर्म से विश्वास उठ जायेगा, शिव शंकर!'

'क्या तुम्हारी बात मानी जायेगी' अन्तस में प्रश्न कुलबुलाया, 'क्या तुम्हारी इच्छानुसार उनका इलाज हो सकेगा?' 'क्या तुम्हारे कथनानुसार उनके घर वाले चलेंगे?'

इन प्रश्नों का कोई उत्तर न था। मां का इलाज शरद और उनके परिवार के लोग अपनी समझ के अनुसार अच्छा से अच्छा कर रहे होंगे। मेरा अनधिकार हस्तक्षेप कौन स्वीकार करेगा? मैं लड़ाई से कभी पीछे नहीं हटा चाहे अखाड़ा जैसा भी हो। समस्याएँ मुझे चुनौती देती सी लगती हैं.... जितनी विकट समस्या हो उतनी विकट चुनौती.... मेरे पौरुष ने कभी पलायन

नहीं किया मगर शरद की मां का इलाज मेरे बताये ढंग से होना संभव नहीं था। अतः मैं मौन हो गया। मन भी शान्त हो गया।

दो-तीन दिन बाद रास्ते में जाते हुए शरद मुझे दिखा। उसने भी मुझे देखा। देखकर रुक गया। मेरे पास आया, 'तुम मम्मी को देखने नहीं आये?' शरद ने शिकायत भरे स्वर में कहा, 'मम्मी की तबियत दिन-प्रति दिन खराब होती जा रही है।' कहते-कहते शरद की आंखें सजल हो गयीं।

'क्या आऊँ यार....!' मैंने व्यथित स्वर में कहा, 'आऊँगा... मम्मी को देखकर मन में कुछ उठेगा... तुम लोग मेरी बात मानोगे नहीं और यूँ मूर्ख की तरह मौन निष्क्रिय रहकर घटना को देखते रहना मेरे स्वभाव में नहीं है। कहते-कहते मैंने शरद के कंधे पर हाथ रख दिया था।'

शरद ने मेरे स्नेहिल स्पर्श की आत्मीयता को समझा और दृढ़ स्वर में कहा, 'तुम आओ तो। फिर जो भी कहोगे हम लोग करेंगे।'

उसका उत्तर सुनकर मेरा दुख गायब हो गया और उत्साहित होकर मैं बोला, 'ठीक है। मैं कल १२ बजे दिन में आऊँगा।'

रात को देर से शिव-मन्दिर गया ताकि पूर्ण एकान्त मिले। विधिवत पूजन किया। मन बार-बार हुलस रहा था 'भोलेनाथ! मेरी बात मानी जायेगी। अब अपनी कृपा से मां की पीड़ा हरो.... उसे जीवन दान दो औघड़दानी! अपनी कृपा से तुमने कई बार होनी अनहोनी कर दी है और अनहोनी होनी कर दी। एक बार पुनः मृत्यु टालो, महाकाल!

ऐसा लगा जैसे शिव ने प्रार्थना स्वीकार कर ली हो।

दूसरे दिन १२ बजे मैं शरद के घर (बैहराना) पहुंचा। घर के सभी लोग बैठे थे—अज्जू, सुनील, सुधा दीदी....। मां को देखकर मेरा हृदय दुख से फटने लगा। मुझे देखकर वे उठने का प्रयत्न करने लगीं। बेचारी उठ भी नहीं पा रही थीं। मैंने आत्मीयता से साधिकार उन्हें लेटे रहने को कहा। वे लेटे ही लेटे अपना हाल बताने लगीं 'डाक्टर कहते हैं कि मुझे ब्लड-कैंसर है....।' 'डाक्टर की छोड़िये मां जी, आप अपनी तकलीफ बताइये।' मैंने स्वयं को संयत करते हुए यथा संभव सहज स्वर में कहा।

उन्होंने अपना हाल बताना आरंभ किया, 'कमजोरी बहुत लगती है.... रात में नींद नहीं आती... भूख नहीं लगती.... कभी-कभी सांस लेने में भी दिक्कत आती है दम घुटने लगता है... बड़ी बेचैनी लगती है। हर बात की दवाई लेनी पड़ती है। नींद की दवाई... खाना हज़म करने की दवाई... ताकत की दवाई... कैंसर की दवाई....। मैं एलौपैथिक दवाई खाती नहीं थी तिस पर मुझे इतनी सारी दवाई खानी पड़ रही है.... मुझे इन दवाओं से बहुत उलझन होती है...।' कहते-कहते वे रोने लगी थीं। मैं डूब गया शिव के ध्यान में.... सजग अन्तर मन शिव-शंकर से ताल-मेल बैठाने लगा। सारी पीड़ा.... सारी व्यथा उछाल दी भोलेनाथ की ओर। अपने मन में कुछ भी न बचा रखा.... बीमारी की सारी वेदना शिवशकर के चरणों में रख दी और कृपया निदान मांगने लगा....। शान्त स्थिर मन पर कृपा का स्पन्दन हुआ और मैंने नीम, तुलसी, काली मिर्च और काले नमक का एक नुस्खा बताया और उसे सेवन करने की विधि भी बतायी। शिव की प्रेरणा थी। मुझे पूर्ण विश्वास था कि इस नुस्खे से निश्चित लाभ होगा। मैंने शरद की मां से कहा था, 'दो-तीन दिन में ही आपको आराम मिल जायेगा। जब तक मन हो दवा खाइये... जब मन न हो दवा न खाइये... चाहें जो दवा खाइये और चाहे तो कोई दवा न खायें। इस नुस्खे को प्रारंभ करने के बाद एलोपैथी की दवा अर्थहीन हो जायेगी।' विस्मित शरद और अन्य लोगों को कमरे से बाहर निकालकर मैंने समझाया था, 'डाक्टर की दवाई दो या न दो मगर मेरे नुस्खे को नियम से दो। नुस्खे के अनुसार सब वस्तुएं एकत्रित करके उसे पीस कर नियम से पिलाते रहो।'

'इसके नियमित प्रयोग से क्या मां ठीक हो जाएंगी? शरद ने आशान्वित होते हुए प्रश्न किया।

'शिव पर भरोसा रखो शरद! उसकी कृपा से सब कुछ हो सकता है।' मैंने उसे ढांढ़स बंधाते हुए कहा था, ''नियम से ब्लड टेस्ट कराते रहो। ब्लड टेस्ट की रिपोर्ट ही नुस्खे की एक सफलता का प्रमाण होगी।'' अब किसी को कोई शिकायत न थी। वे डाक्टर की दवा करने को स्वतंत्र थे। मेरी

बात का विरोध तो तब होता जब मैं डाक्टर की दवाई बन्द करने को कहता या डाक्टर मेरे नुस्खे पर एतराज करता। ऐसा कोई विरोध न था। दोनों साथ-साथ चल सकते थे। मुझे खुशी थी कि शरद के घर के सदस्यों ने उत्साहपूर्वक सहयोग दिया और मेरे बताये हुए नस्खे को विधिवत देना प्रारंभ कर दिया।

३-४ दिन बाद १० दिसम्बर १६८६ को दिन में लगभग १२ बजे पुनः मैं शरद के घर गया। लेटी हुई मां उठ बैठी। हर्ष के आवेग में खड़ी होते होते मुझे आशीष देने लगी। 'मैं ठीक महसूस कर रही हूँ, अब मैंने दवाई खाना बन्द कर दिया है... मैं स्वयं उठने-बैठने लगी भूख भी थोड़ी लगने लगी है... खाने का स्वाद अच्छा लगता है.... आप तो भगवान का रूप बनकर आये हो....' आदि आदि।

मैं शिव के प्रति कृतज्ञता से भर उठा। अन्तस शिव में स्थिर हो गया। शरद की मां के मुख से निकली बातें कान में तो जा रही थीं मगर दिमाग उन्हें नहीं रजिस्टर कर रहा था... जय हो महाकाल! तुमने मेरा मान रखा... मां की पीड़ा हर ली... त्वरित लाभ मिला। जाने कितनी बार तुम्हारी कृपा से विलक्षण चमत्कार हुए हैं। भोलेनाथ अपने चाहने वालों की इच्छा का ख्याल रखते हैं.... शंका का समाधान करते हैं.... देर अवश्य होती है मगर अंधेर नहीं है। साधक के लिए धैर्य बहुत आवश्यक है। धीरवान, वीर, आस्थावान साधक ही सफलता की मंजिल तक पहुंच पाता है। अधिकांशतः साधक, अधीर हो कर अविश्वास करने लगते हैं। प्रक्रिया पर.... इष्ट पर शंका करने लगते हैं और मार्ग से भटक जाते हैं। बीच में ही मार्ग छोड़ देना कोई बुद्धिमानी नही है। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे कमरे की दीवाल में आप कील गाड़ना चाह रहे हैं। किसी स्थान पर कील जमाकर प्रायः आठ-दस हथौड़ी चलाते हैं। आठ दस हथौड़ी के बाद आप को लगा कि शायद कील यहां न गड़ पायेगी। सीमेन्ट के प्लास्टर के अन्दर पूरी ईट समझकर आपने स्थान बदल दिया। दूसरे स्थल पर भी आठ-दस हथौडी मार कर स्थान वदल दिया। परिणामतः पूरा जीवन हथौड़ी चलाते बीत गया मगर कील न गड़

पायी। जो कील १५ हथौड़ी में एक स्थान पर गड़ जाती वह सैकड़ों हथौड़ी चलाने के बाद भी नहीं गड़ पायी। असफलता की कुंठा मन को डसने लगी और पूरा जीवन व्यर्थ ही व्यतीत हो जाने का दुख मन को और अधिक पीड़ा पहुंचाता है।

शरद की मांग भावुक हो, जाने क्या क्या कहती रहीं। मुझे जब होश आया तो उन्हें कन्धा पकड़कर लिटाया और कहा, 'ये सब तो मेरा फर्ज था मांजी! आप इस तरह कह कर मुझे शर्मिन्दा न करें।' घर के सभी सदस्य प्रसन्न थे। मां को तकलीफ से मुक्ति मिल जाने के कारण शरद भी खुश था। थोड़ी देर तक वहां बैठने के बाद हम बाहर निकले। शरद से ब्ल्ड टेस्ट के बारे में पूछा। शरद ने बताया कि ब्लड टेस्ट ३-४ दिन बाद होगा। ब्लड-कैसर के रोगी का लगभग हर सप्ताह ब्लड टेस्ट होता है। शरद ने हिचकिचाते हुए पूछा 'सुशील, क्या ब्लड टेस्ट में कोई सुधार हो सकता है? मां तो अब डाक्टर की दवाई भी नियम से नहीं ले रही....।'

मैं क्या उत्तर देता.... मैं तो स्वयं उसी जगह खड़ा था जहां शरद खड़ा था.... भविष्य तो भोले शंकर ही जानें। मैने शरद को भरोसा दिलाते हुए इतना ही कहा था– "ईश्वर पर भरोसा रखो शरद! उसकी कृपा से कुछ भी संभव है।'

४-५ दिन बाद शरद मुझसे मिला। वह हर्षित था। ब्लड टेस्ट की रिपोर्ट में हीमोग्लोबिन का पतन रुक गया था। ब्लड कैंसर में होमोग्लोबीन का उत्तरोत्तर पतन बीमारी के बढ़ने का लक्षण होता है। हीमोग्लोबिन का स्थिर हो जाना बीमारी के स्थिर होने का लक्षण है। बीमारी स्थिर हो गयी.... मां को कोई उलझन नहीं कोई परेशानी नहीं.... और क्या चाहिये? घर भर प्रसन्न था। मेरा हृदय भी खुशी से भर गया।, मेरे नुस्खे के प्रति शरद के घरवालों की आस्था बढ़ गयी थी। वे उस नस्खे को ही इलाज समझ रहे थे। वह नुस्खा तो शिव की तात्कालिक प्रेरणा थी। उससे लाभ होना तो निश्चित ही था मगर कब और कितना होगा? ये समझ पाना बड़ा मुश्किल था। शिव की कृपा का प्रवाह घटना-चक्र में परिवर्तन कर रहा है। नुस्खा

शिव की कृपा उन तक पहुंचाने का निमित्त मात्र था। निमित्त के अतिरिक्त मेरी और कोई हैसियत न थी। अगले ब्लड टेस्ट की रिपोर्ट जानने के लिये मैं स्वयं व्यग्र था। क्या ब्लड-कैंसर ठीक हो सकता है? इस बार हीमोग्लोबिन स्थिर हुआ है तो अगली बार सुधार भी हो सकता है। क्या वाकई शरद की मां ठीक हो जायेंगी.... कल्पना-मात्र से मैं उत्तेजित होने लगा।

शिव की कृपा.... अगले सप्ताह की ब्लड रिपोर्ट में हीमोग्लोबिन में सुधार हो गया था। सब लोग प्रसन्न थे.... हर्षमिश्रित आश्चर्य.... डाक्टर तो समझ रहा था कि उसकी दवा से फायदा हुआ है मगर घरवाले तो समझ रहे थे कि जब दवाई नियम से खायी ही नहीं जा रही तो दवा का यह परिणाम कैसे हो सकता है? शरद और उसके घर के सदस्य मां को ठीक होने का श्रेय मुझे ही दे रहे थे। मैं.... सिर्फ मैं ही जानता था कि ये शिव की कृपा है। सदैव शिव अपनी कृपा से चमत्कार करते हैं और श्रेय मुझे मिलता है.... शायद शिव परीक्षण करते हों कि अहंकार बढ़ता है या नहीं... ख्याति आवेगित करती है या नहीं.... शक्ति का मद भ्रमित करता है या नहीं,। बाबा पलटूदास की वह लाइन याद आ रही है–

'करत करावत आप हैं, पलटू पलटू शोर'

शरद की मां दिन प्रतिदिन ठीक होती जा रही थीं। मैं निश्चिंत हो गया था। मेरा ध्यान उधर से हट गया। मैं अपने क्रियाकलापों में पूर्ववत् व्यस्त हो गया। एक दिन रास्ते में शरद जाता दिखा। मैंने आवाज दी। वह रुक गया। मां का हाल पूछा तो उसने उत्साहपूर्वक बताया, 'बेबीदा भोपाल से आये थे। वो मां को इलाज के लिए बम्बई ले गये। बम्बई में कैंसर के इलाज के लिए टाटा इंस्टीट्यूट है, वहां पर अत्याधुनिक सेवाएं उपलब्ध हैं। अब मम्मी एकदम ठीक हो जाएंगी।' शरद हर्ष के आवेग में बोला। मैं उसकी बात का क्या उत्तर देता। मेरा मन तो बुझ गया था। बिना अनुमति के स्थान परिवर्तन ने सारा किया-धरा चौपट कर दिया था। मैं उसे कैसे समझाता कि उसने शिव की कृपा खो दी थी।

अभी कुछ दिनों पहले एक पार्टी में हम लोग साथ-साथ बैठे थे। आलोक

बैनर्जी और मुरारी लाल अग्रवाल के साथ बैठकर शरद से बातें हो रही थी। जाने कहां से मुरारी ने अपनी मां की बीमारी की चर्चा कर दी। उसकी बात समाप्त होने तक शरद भावुक हो चुका था। उसे अपनी मां की याद आ गयी थी। मेरी ओर पलट कर रुंधे गले से बोला, 'कभी-कभी लगता है कि यदि मां को बेबीदा 'टाटा इन्स्टीट्यूट' न ले जाते और तुम्हारा इलाज चलता रहता तो शायद मम्मी कुछ वर्ष और जी जातीं।'

मैं उत्तेजित होकर बोला, 'कई वर्ष जीवित रहतीं या, मैं क्या कहूं.... तुमने तो मां को बम्बई भेजने के पहले मुझसे पूछा तक नहीं। जब यहां सुधार हो ही रहा था। तो बम्बई ले जाने की क्या आवश्यकता थी। खैर, छोडो इन बातों को। जो हो गया सो हो गया। जाने वाला अब वापस नहीं आ सकता।' कहकर मैंने रोते हुए शरद को ढांढ़स बंधाया।

दिनांक १८ जनवरी ८७ को शरद की माँ ने शरीर त्याग दिया था।

■ ■ ■

इबादत का ढंग

ईश्वरीय कृपा अमोघ शक्ति है। तंत्र मंत्र के समस्त अनुष्ठानों-यज्ञों की सफलता ईश्वर की कृपा पर निर्भर करती है। समस्त धर्मों के दर्शन का मूल यही है। विभिन्न धर्म ग्रन्थों का सार यही है। सभी धर्मावलम्बी इस विषय पर एक मत हैं कि समस्त साधनायें एवं क्रियाएं ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए ही होती हैं। उत्तरोत्तर ईश्वरीय कृपा का बढ़ते जाना प्रगति का लक्षण है। कृपा में वृद्धि के साथ-साथ मनुष्य भी उत्तरोत्तर बेहतर होता जाता है। व्यक्ति के अन्दर शुभत्व का विकास होना अनिवार्य है। ये सब मिले जुले सत्य हैं। एक ही तथ्य के विभिन्न रूप हैं। जैसे बच्चा बढ़ रहा है जब कहा जाता है तो इसका अर्थ ही है कि उसका हाथ, पैर, मुख, नाक, कान सब बढ़ रहा है। एक-एक अंग के विकास की बात अलग से नहीं कही जाती। बच्चे के बढ़ने की बात से तात्पर्य यही है कि उसका सर्वांगीण विकास हो रहा है। इसी प्रकार ईश्वरीय कृपा का अर्थ ही है कि व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो रहा है। यदि व्यक्तित्व के किसी भी पहलू में ठहराव है.... विकास अवरुद्ध है.... प्रारब्ध, धारणा, संस्कार या पूर्वाग्रह के कारण तो विकास की गति भी ठहर जायेगी। ये असंभव है कि आप अच्छे आदमी न हों और आप पर ईश्वर की कृपा हो। यदि आप अच्छे पिता, अच्छे पुत्र, अच्छे मित्र, और अच्छे सहयोगी नहीं हैं, तो आप अच्छे आदमी भी नहीं हो सकते और अच्छे आदमी नहीं हैं तो ईश्वर की कृपा भी नहीं है। ईश्वर की कृपा आपके अच्छे होने के अनुपात में ही होगी। इस अच्छे होने के मानदंड को भी समझ लीजिये। अच्छा पति या अच्छा पिता आपको अपनी दृष्टि में होना है। अन्तरात्मा से पूछिये... अपने हृदय में टटोलिये... यदि आप अपनी दृष्टि में ठीक हैं तो सब ठीक है। अपनी शक्ति सामर्थ्य भर कर्तव्य निभाया तो ठीक है। पत्नी या पिता या पुत्र संतुष्ट हों या न हों। निर्णायक आप

स्वयं हैं अन्य कोई नहीं। आप कर्त्तव्य मात्र बरतें। संबंधियों को खुश करने के चक्कर में मत उलझिए। कोई किसी को हमेशा के लिए कभी खुश नहीं कर सकता। फिर भी लोग दूसरे को खुश करने के भ्रम में पूरा जीवन व्यर्थ ही गंवा देते हैं। पत्नी कहती है कि वह पति की खुशी के लिए जी रही है... पिता कहता है कि वह पुत्र के लिए धन संग्रह कर रहा है। एक लम्बे समय के बाद जब हमारे सारे प्रयत्नों के बाद भी हमारा प्रिय खुश नहीं होता तो हम क्षुब्ध होकर उसे अपशब्द कहते हैं और बाकी सारा जीवन उसे दोष देते हुए... गरियाते हुए... दूसरों से शिकायत करते हुए... अपनी करनी का बखान और उसकी कृतघ्नता का रोना रोते हुए बिता देते हैं। पूरा जीवन एक अर्थहीन यात्रा में व्यतीत हो जाता है।

ईश्वर की कृपा सब पर समान भाव से बरस रही है। आप अनुभव करें या न करें.... मानें या ना मानें... जानें या न जानें। बादल जब बरसते है तो कोई भेद नहीं करते। गरज-गरज कर घटायें जब बरसती हैं तो जल पहाड़ को भी भिगोता है, मैदानों में भी बरसता है और घाटियों को भी भरता है। बरसते हुए जल का जितना संग्रह करना चाहें... कर सकते हैं– बस इच्छानुसार पात्रता चाहिये। जितना बड़ा पात्र होगा उतना विशाल संग्रह होगा। जितना गहरा पात्र होगा उतना गहरा संग्रह होगा। पात्र ही जल को आकार देता है। जल का स्वयं कोई आकार नहीं होता। सागर में होगा तो सागर कहलायेगा। तालाब में होगा तो तलैया कहलायेगा। सुराही के जल का आकार कटोरी से भिन्न होगा। ईश्वर की कृपा जिस आकार में संजोई गयी, वही स्वरूप धर्म बन गया। बुद्ध, महावीर, मोहम्मद, ईसा सभी धर्मों के प्रवर्तकों ने अपने पात्र भरे। उनके पात्रों के आकार भिन्न थे। इसलिये धर्मों के स्वरूप भिन्न हुए। पात्रों के आकार युग काल परिस्थितियों के अनुसार भिन्न थे। इसलिये उनकी आचार-संहिता भिन्न है मगर कृपा में कोई भिन्नता नहीं है। सभी धर्मों की आत्मा एक है। जिस तरह जल स्थूल शरीर का आधार है उसी तरह ईश्वरीय कृपा आध्यात्मिक जीवन के लिये आक्सीजन है। ईश्वरीय कृपा ही हमारे जीवन का संचालक है। ईश्वरीय कृपा की संजीवनी-सुधा नास्तिक-आस्तिक बुद्धिमान-मूर्ख सभी को प्राप्त है।

ईश्वरीय कृपा की प्राप्ति के मार्ग अनगिनत हैं। फिर भी ज्ञान, भक्ति, प्रेम एवं कर्मयोग बताये गये है। अपने स्वभाव के अनुरूप इन्हीं विभाजन के अन्तर्गत स्वयं की श्रेणी का निर्धारण कर लीजिये और कृपा प्राप्ति की यात्रा प्रारंभ कीजिये।

एक बार हज़रत मूसा जा रहे थे। जंगल से गुजरते हुए हज़रत ने एक विचित्र दृश्य देखा। एक गड़रिया अपनी भेड़ को गोद में लेकर प्यार कर रहा था। भेड के शरीर को सहला रहा था। कभी उस पर अपने गाल रगड़ता... कभी उंगलियां फेरता... आंख से आंसू निकल रहे थे। प्रेम-रस में डूबी आंखें अध मुंदी थीं... मुंह से अस्फुट सी बडबड़ाहट....। हज़रत ने दुनिया देखी थी मगर यह दृश्य विलक्षण था। कभी किसी को भेड से इस तरह जुड़ते नहीं देखा था। फिर गड़रिया तो भाव-विभोर था। तन-बदन की सुध ही न थी। घनघोर जंगल में जहां दूर-दूर तक किसी आदमी की उपस्थिति की संभावना भी न थी वहां एकाकी गड़रिया भेड़ से बातें कर रहा था। भेड़ को दुलराता.... बतियाता... ऐसा लग रहा था जैसे जगत में सिर्फ गड़रिया और भेड़ ही सत्य हों। एक दूसरे में इतना तन्मय, संवेदना के तल पर इतने एकजुट जैसे और किसी वस्तु का अस्तित्व ही न हो।

हज़रत को उत्सुकता हुई कि गड़रिया कह क्या रहा है? क्या भेड़ उसकी भाषा समझ रही है? भेड़ समझती हुई तो लगती है क्योंकि गड़रिये के स्नेहिल स्पर्श का विरोध तो नही कर रही.... छटक कर भाग नहीं रही... पशुवत आचरण भूल गयी सी लगती है। हज़रत गड़रिये के पास गये... पीछे से.... गड़रिये के समीप पहुंच कर सुनने-समझने का प्रयास करने लगे। ध्यान देकर सुना तो चौंक पड़े। एक-आध वाक्य समझ में आया। वह कह रहा था–'अल्लाह अगर तू मेरी भेड़ होता तो मैं तुझे खूब साफ करता... नहलाता धुलाता तेरे बदन से कीलें (जूं) निकालता... तुझे जरा भी मैला न होने देता....।' बात हद तक गुजर चुकी थी। हज़रत बिगड़े, 'मूर्ख! अल्लाह क्या भेड़ हैं? अल्लाह में क्या गन्दगी होगी? अरे अल्लाह के बदन में क्या जूं पड़ेगी जो तू निकालेगा? कुफ्र है ये।'

हज़रत की डांट सुनकर गडरिये का ध्यान टूटा। हज़रत को देखकर घबरा गया। थर-थर कांपने लगा। उसे लगा कि वह बहुत बडा गुनहगार है। हजरत कह रहे हैं तो ये कुफ्र ही है। जमीन पर गिर कर वारंबार माफी की गुहार लगाने लगा, 'खता हो गयी हजरत... बहुत बड़ी खता हो गयी.... मैं अनपढ़ जाहिल गवांर.... जानवरों के बीच रहते हुए जानवर ही हूं, हजरत! मैं क्या जानूं इबादत का ढंग! अल्लाह के रहमो करम से आज आपका दीदार हुआ.... आप इबादत का सहीं ढंग सिखा दें।' हजरत को उसके माफी मांगने पर रहम आया। पास बैठकर उसे नमाज़ याद करायी। नमाज अदा करने का ढंग सिखाया और पांचो वक्त पढ़ने की हिदायत दी। गडरिया खुश हुआ कि हजरत के दर्शन हुए और हजरत ने अल्लाह की इबादत का ढंग बताया। हजरत खुश हुए कि अल्लाह की नेक राह पर एक बन्दा और चल पडा।

कहते हैं– वहां से थोड़ी ही दूर गये थे हजरत कि आकाशवाणी हुई– 'हज़रत! मैंने दुनिया में तुझे बिछड़ो को खुद से मिलाने के लिये भेजा है और तूने जो मुझसे जुड़ा था उसे जुदा कर दिया।' हज़रत को गलती का एहसास हुआ। फिर लौटे और गड़रिये से बोले, 'तू जो करता था वही कर। जव उसे (अल्लाह) एतराज नहीं तो बीच में बोलने वाला मै कौन?

हज़रत ने ठीक ही कहा। प्रार्थना भावों की अभिव्यक्ति है।

'जाको दर्शन इत्त है ताको दर्शन उत्त
जाको दर्शन इत नहीं ताको इत्त न उत्त'

■ ■ ■

तंत्र और उमाकान्त मालवीय

इलाहाबाद शहर में महालेखाकार कार्यालय है। महालेखाकार कार्यालय बहुमुखी प्रतिभाओं एवं बुद्धिजीवियों का गढ़ है। हर क्षेत्र के दिग्गज इस कार्यालय में कार्यरत हैं। बैडमिन्टन के कई वर्ष लगातार रहे प्रादेशिक चैम्पियन मुरारीलाल मेहरोत्रा, गिरधारी लाल मेहरोत्रा, सुभाष सक्सेना, हॉकी के श्री श्याम बाबू गुप्ता, राम बाबू गुप्ता, बालीबाल के श्री रजनी कान्त त्रिपाठी आदि उच्च कोटि के खिलाड़ी यहां विद्यमान है। खेल, संगीत. नाटक, साहित्य कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसके उच्च स्तरीय योग्य व्यक्ति इस कार्यालय में न हों। स्व० श्रीमती इंदिरा गांधी ने इमरजेन्सी में (१९७६-७७) कर्मचारियों की उपस्थिति के लिए कड़े कदम उठाये। सुबह, दोपहर, शाम तीन बार उपस्थिति पंजिका पर दस्तखत होने लगे। उकता कर श्री के.के. मिश्रा (आडिटर) ने नौकरी छोड़ दी। नौकरी छोड़कर वे बम्बई चले गये और अपने भाई श्री ए.के. मिश्रा के सहयोग से बिग बैनर फिल्म 'रजिया सुल्तान' प्रोडयूस कर दी। श्री केशव प्रसाद मिश्र (आडिटर) के उपन्यास 'कोहबर की शर्त' को पढ़कर श्री ताराचन्द बड़जात्या ने फिल्म बनाने की अनुमति मांगी। केशव जी ने इंकार करते हुए पत्र लिखा कि– ' रचनाकारों के लिए उनकी रचनाएं बच्चों की तरह होती हैं जैसे मां पुत्र से ममता रखती है उसी तरह हम अपनी कृततियों से स्नेह रखते हैं। आप फिल्मकार संवेदना के इस तल को न समझ सकेंगे.... जब जहां से जी चाहा कहानी को काट छांट देंगे।'

ताराचन्द बड़जात्या ने पुनः पत्र लिखा कि– 'आपकी कहानी में कोई भी संशोधन आपकी अनुमति के बगैर नहीं होगा।'

तब केशव जी एक दिन मुझसे अकेले में पूछने लगे। 'राजश्री प्रोडक्शन कैसा प्रोडक्शन है? ताराचन्द बड़जात्या कैसा आदमी है....?'

मैंने कारण पूंछा तो उन्होंने सारी बात बतायी। पहले तो मुझे विश्वास ही नही हुआ मगर जब पत्र देखा तो केशव जी की सरलता पर चकित रह गया। मैंने जब उन्हें इसकी अहमियत समझायी – धन, ख्याति का खाका खींचा तो पत्रोत्तर देने के बजाय केशव जी स्वयं बम्बई चले गये और ताराचन्द बडजात्या से अनुबन्ध करके लौटे। केशव जी के उपन्यास कोहवर की शर्त पर बहुचर्चित फिल्म 'नदिया के पार' बनी। बाद में इसी आधार को शहर की पृष्ठभूमि देते हुये 'हम आपके है कौन' बनायी गयी। प्रयागनगर के साहित्य कला के स्तर को ऊंचा बनाये रखने में महालेखाकार कार्यालय का बहुत बड़ा हाथ है। यहां अधिकारी कर्मचारियों पर रोब नहीं जमाते। सभी मिल जुलकर एक जुट हो काम करते हैं। चाय की दुकान पर समूह में बैठे हुए अधिकारी कर्मचारियो की मंडली में यह भेद कर पाना असंभव ही है कि कौन कर्मचारी है और कौन अधिकारी। कार्यालय के कार्यों में सभी एक दूसरे का सहयोग करते हैं और किसी भी क्षेत्र के प्रतिभावान व्यक्ति के उत्तर दायित्व को स्वयं ओढ़कर उसे अपनी प्रतिभा के विकास हेतु पूरी सुविधा देते हैं। यहां के कर्मचारियों-अधिकारियों का आपसी सहयोग-सद्भाव स्पृहणीय है। पहले राजे महराजे कलाकारों और प्रतिभाओं को संरक्षण देते थे। आज इलाहाबाद में महालेखाकार कार्यालय संरक्षण दे रहा है। बात तो यहां तक बढ़ गयी है कि वर्तमान प्रधान महालेखाकार श्री जी.सी. श्रीवास्तव जी कविता लिखते हैं और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हर तरह का सहयोग देने को तैयार रहते हैं।

कुछ समय पहले ए.जी. आफिस के चौराहे पर एक यादव जी की चाय की दुकान थी। चाय वाले यादव जी भी पहले ए०जी० आफिस में चपरासी थे। **जाने क्या सूझी कि नौकरी छोड़कर चाय की दुकान कर ली।** हम सब लोग वर्षों उनकी चाय की दुकान पर बैठे हैं। श्री रमेश चन्द्र मालवीय,

उमाकान्त मालवीय, सरनबली श्रीवास्तव, गोपाल कृष्ण अग्रवाल, वी० एन० दुबे, के०एम० गिरि, रवि नाथ सारस्वत, ओ०डी० सिन्हा, केशव प्रसाद मिश्र एवं कन्हैया भैय्या आदि बहुत से आदरणीय लोग बैठते थे। युवा वर्ग के हम जमील, अशोक संड, सुरेश तिवारी कौशल सिन्हा, काजमी, शरद, गोपाल गौड आदि भी उस मंडली में जुड़ जाते थे। सारी मंडली सुवह ११.३० वजे चाय पीने के लिए जमा होती थी और १२.३० बजे तक वापस कार्यालय चली जाती थी। पुनः १.३० बजे सब लोग जमा होते और २.३० के बाद वापस कार्यालय जाने लगते। हम लोग नित्य ही एक स्थल पर बैठते थे। यह क्रम कई वर्षों से चला आ रहा था। सबके साथ रहते हुए भी मेरी अपनी दुनिया अलग थी। मेरी दुनिया में उमाकान्त मालवीय का कैसे प्रवेश हुआ... कैसे हम तंत्र की गहराई में उतरे... आज सबको ज्ञात होगा।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एस० डी० जैन छात्रावास का वार्षिकोत्सव था। शायद पचास साल वाला या सौ वर्ष वाला समारोह था। छात्रावास की कार्यकारिणी का एक सदस्य के०बी० सिन्हा उन दिनों मेरे बहुत करीब था। एक दिन के०बी० मेरे पास आया और समारोह के आयोजन के संबंध में विचार-विमर्श करने लगा। कई दिन तक कार्यक्रम होने थे। एक दिन कवि सम्मेलन भी था। के०बी० ने कहा, 'भाई साहब! कवि-सम्मेलन में हम लोग आपके कार्यालय के कवि श्री उमाकान्त मालवीय को बुलाना चाहते हैं मगर....।' 'मगर क्या के०बी० ?' मैंने उसे उत्साहित किया। उसने धीरे से कहा, 'फण्ड कम है। हम लोग उन्हें मात्र २५०१ ही दे सकते हैं। उनकी प्रतिष्ठा को देखते हुए बहुत कम है। अगर आप उन्हें जानते हों और उनसे कह दें तो....।' कहते-कहते के०बी० चुप हो गया।

मैं चौंक पड़ा.... क्या मेरे साथ बैठने वाले उमाकान्त मालवीय जी इतने बड़े कवि हैं....? हम लोगों के कहने पर चाय की दुकान पर सस्वर कविता पाठ करने वाले उमाकान्त जी इतने प्रतिष्ठित हैं? नहीं नही.... वो नहीं हो सकते.... मगर कार्यालय में दूसरे उमाकान्त मालवीय तो हैं नही....। मन

पुनः शंका करने लगा। मैंने के०बी० से पूछा, 'तुम उन्हें पहचानते हो?' उसने सहमति में सर हिलाया।

मैंने निश्चयात्मक स्वर में कहा, 'कल १२ बजे यादव की चाय की दुकान पर आ जाना.... एक उमाकान्त मालवीय हमारे साथ बैठते हैं। अगर वही हुए तो मै उनसे कह दूंगा।' के०बी० चला गया। दूसरे दिन १२ बजे के०बी० अपने दो-तीन साथियों के साथ वहां आया। हम लोग चाय की दुकान पर बैठे थे। उमाकान्त जी के मुक्त ठहाके गूंज रहे थे। के०बी० के आने पर मै उठकर उसके पास गया और पूछा, 'क्या यही हैं वो....?' के०बी० के साथ के लड़के ने हर्ष मिश्रित आदर से सर हिलाया। मुझे स्वयं पर कोफ्त हुई कि इतने अच्छे कवि के पास बैठकर भी उससे इतना दूर...? खैर इशारे से उमाकान्त जी को बुलाया। उमाकान्त जी मंडली छोड़कर मेरे समीप आ गये। मैंने उनका परिचय लडकों से कराया और के०बी० के बारे में बताया कि वो अनुजवत है और एस०डी० जैन छात्रावास के कवि-सम्मेलन में उन्हें निमंत्रित करने आया है। उमाकान्त जी ने तुरन्त सहमति देते हुए कहा, 'ठीक है मैं पहुंच जाऊंगा।' उनकी सहमति इतनी सरल, सहज और त्वरित थी कि किसी को उनके आने का विश्वास नहीं हुआ। लगा कि वो टाल रहे हैं। लड़कों ने मेरी ओर शंका से देखा। मैंने बात स्पष्ट करने के लिए उमाकान्त जी से कहा, 'कोई दिक्कत हो तो बताइये।'

'अरे नहीं सुशील जी' झटके से बोले उमाकान्त जी, 'दिक्कत क्या होगी?' मैंने लड़कों की ओर देखा तो एक लड़के ने मुझे रुपये का इशारा किया।

मैंने उमाकान्त जी से कहा, 'दरअसल बात ये है कि इन लड़कों के पास फण्ड कम है इसीलिए रुपये....।'

मेरी बात काटते हुए बोल पड़े उमाकान्त जी, 'रुपये की कोई वात नहीं.... आपने कह दिया सुशील जी! इतना बहुत है।' फिर लड़कों की ओर

घूमकर बोले, 'तुम लोग निश्चिंत रहो। मैं समय पर पहुंच जाऊंगा।' के०बी० ने उनसे पूछा, 'आपको लेने के लिए कार किस पते पर भेजें?'

उमाकान्त जी हंस कर बोले, 'इसकी कोई आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं पहुंच जाऊंगा।'

एक लड़के ने निराशा से मेरी ओर देखा। इन लोगों को उमाकान्त जी के स्वयं पहुंच जाने की बात पर एकदम विश्वास नहीं हो रहा था। मुझे भी लग रहा था कि उमाकान्त जी गोली दे रहे हैं। मुझे लगा कि बातें खुलकर कर लेना बहुत जरूरी है। मैं बेबाक स्वर में बोला, 'उमाकान्त जी! इन लोगों के पास रुपये कम हैं जो कुछ तय करना हो मोल तोल करके तय कर लीजिये... बाद में किचकिच न करियेगा।' ये मेरा संगीतकारों का अनुभव था। उनसे यदि आपने धनराशि तय नहीं की तो बाद में किचकिच अवश्य होती है।

मेरे मुंह से इतना निकलते ही उमाकान्त जी ठहाका मार कर हंसने लगे और जोर-जोर से आवाज देकर रवि चाचा (रविनाथ सारस्वत) को बुलाने लगे.... 'रवि गुरु! ओ रवि गुरु!' रवि चाचा उठकर पास आये। उमाकान्त जी हंसते हुए बोले, 'देखो ई का कहत है'.... रुपये तय कर लेव बाद में किचकिच न कियेव।' उनकी बात पर रवि चाचा भी मुझे अजीब सी नज़रों से देखते हुए हंसने लगे। अब कुछ कहना सुनना व्यर्थ था। 'या तो ये आदमी बहुत गहरा है या फिर बहुत हलका.... बीच का तो बिलकुल नहीं है.... खैर समय बतायेगा...' मैं सोच रहा था।

इधर लड़के आपस में खुसुर-पुसुर कर रहे थे। उन्हें यही लग रहा था कि उमाकान्त जी का आना कैसे निश्चित किया जाय। आपस में बात-चीत तय करके वे मुझसे बोले, 'भाई साहब! के०बी० कह रहा है कि आप स्वयं बहुत अच्छी कवितायें लिखते हैं!'

'हां हां' मैंने मुदित होते हुए कहा, 'उमाकान्त जी भी मेरी कविताओं

की प्रशंसा करते हैं।' गर्व से फूलते हुए मैने कहा था। 'तो भाई साहब! आप तो अपने ही हैं, आपको तो निमंत्रण की कोई आवश्यकता नहीं। आपको तो अपनी कविताएं पढ़ना ही है।' वही लड़का पुनः मुझसे बोला।

उस समय मंच पर कविता पढने का विचार मुझे मुदित कर रहा था। मैंने अपनी खुशी दवाते हुए कहा, 'ठीक है। अगर तुम लोग चाहते हो तो मै भी कविता पढ़ दूंगा।' अपनत्व दर्शाते हुए दूसरा लडका बोला, 'ये आपका अपना कार्यक्रम है। इसमें आपको तो कविता पढ़ना ही है।'

'ठीक है।' मैंने स्वीकृति देकर उन्हें जाने का इशारा किया। कुछ कदम चलकर वे लड़के ठिठके फिर के०बी० ने पलट कर प्रश्नसूचक स्वर मे कहा– 'फिर मालवीय जी आपके साथ ही आयेंगे या....।'

'तुम लोग निश्चिन्त रहो' मैं उन्हें आश्वस्त करते हुए बोला, 'मैं उन्हें साथ लेकर ही आऊंगा।'

निर्धारित तिथि पर सायं ७-३० बजे हम लोग स्कूटर से छात्रावास पहुंचे। स्कूटर रुकते ही लड़कों ने घेर लिया और चारों तरफ एक लहर सी दौड़ गयी– 'मालवीय जी' आ गये। कुछ लडकों ने स्कूटर से उतरते ही उनका स्वागत किया और उन्हें लेकर चल पड़े। यह कहते हुए कि 'आइये मालवीय जी.... इधर आइये।' मैं स्कूटर खड़ा करता। लाक करता। इसके पहले ही वे लोग उमाकान्त जी को लेकर बढ़ लिये। अब मेरी समझ में आया कि लड़कों ने उमाकान्त जी को ले आने और ले जाने के लिए ही मुझे कविता-पाठ का प्रलोभन दिया था। यह तथ्य हृदय विदारक था। मेरी इच्छा हुई कि मै स्कूटर स्टार्ट करके बाहर निकल जाऊं और तब वापस लौटूं जब उमाकान्त जी को ले जाना हो। अब वहां का हर पल मुझ पर भारी था। उमाकान्त जी चल तो दिये थे मगर दस कदम बाद ठहर गये थे और कनखियों से मुझे रह-रहकर ताक रहे थे। जब मुझसे नज़र मिलती तो मुस्कराने लगते। प्रत्यक्ष रूप में तो वे लड़कों से बात करते ही प्रतीत होते थे मगर

अप्रत्यक्ष रूप से मेरा उपहास उडा रहे थे कि– ये तुम्हारे अनुजवत है 'न... बहुत अपना समझते थे इन लडको को. ..।' भागने का कोई मार्ग न देख मैं आहिस्ता आहिस्ता उन्ही की ओर वढ़ा। मेरे ममीप पहुंचते ही वे लड़कों के साथ आगे बढ लिये जैसे उनका मुझसे कोई सरोकार ही न हो। उनके पीछे-पीछे चलने के अतिरिक्त कोई विकल्प न था। लडके उन्हें स्वागत कक्ष में ले गये। उनके बैठ जाने के बाद पीछे-पीछे मै भी स्वागत कक्ष में घुसा। मेरे खिसियाये हुए मुख को देखकर उमाकान्त जी ने खड़े होकर हंसते हुए मेरा स्वागत किया, 'आइये सुशील जी.... इधर बैठिए (उन्होंने अपने पास बैठने का इशारा किया) मगर मैं उनसे हटकर थोडी दूर पर वैठा। मेरी तरफ इशारा करते हुए लड़को से उमाकान्तजी बोल रहे थे– 'ये मेरे बहुत घनिष्ठ मित्र हैं'.... बहुत अच्छी कवितायें लिखते है.... आदि आदि।' मगर मुझे उनकी बातें व्यंगात्मक लग रही थी। मुझे लग रहा था कि वे मेरा मज़ाक उड़ा रहे है। स्वयं की अवमानना का दंश मुझे भीतर ही भीतर कचोट रहा था।

थोड़ी देर वार कोई लड़का उनके लिये एक प्लेट में नाश्ता लेकर आया। उसने नाश्ते की प्लेट उमाकान्त जी के सामने रख दी और उनसे नाश्ता प्रारंभ करने का अनुरोध किया। उमाकान्त जी ने मुस्कुराते हुए कनखियों से मुझे देखा। मुझ पर घड़ों पानी फिर गया। जिस कार्यक्रम को अपना समझ और जिन लड़कों को अपना सगा समझकर मैं उमाकान्त जी को लाया था उसमें मेरी अपनी उपहासजनक स्थिति पर उमाकान्त जी मुस्करा रहे थे। प्रतिउत्तर में मै भी मुस्कराया। उनकी मुस्कराहट में शरारत थी.... चपलता थी और मेरी मुस्कराहट में खिसियाहट थी..... अपमान का बोझ था। थोड़ी देर बाद लड़कों ने उमाकान्त जी से पुनः नाश्ता प्रारंभ करने का अनुरोध किया। उमाकान्त जी पुनः कनखियों से मुझे देखकर मुस्कराये। फिर एक लड़का चाय लेकर आया। सामने रखकर बोला, 'अब तो नाश्ता प्रारंभ करिये मालवीय जी।' सहसा उमाकान्त जी गंभीर हो गये। उनकी हंसी तिरोहित

हो गयी। मेरी ओर घूमकर अपनी दृढ़ और गंभीर आवाज में आदर और आत्मीयता का पुट देते हुए बोले, 'लीजिये, सुशील जी।' कहकर उन्होंने नाश्ता और चाय का कप मेरी ओर बढा दिया। समाज का मान्य और सम्मानित व्यक्ति जबकि किसी को सम्मान देता है तो समाज भी प्रभावित होता है। कुछ समय के लिए लड़के मेरी ओर देखकर आपस में फुसफुसाने लगे थे। उमाकान्त जी के लिये तुरन्त नाश्ते की दूसरी प्लेट आयी। हम लोगों ने स्वल्पाहार एक साथ ही लिया।

नाश्ता करने के बाद मै वहां से सरक लिया। बाहर निकल कर के०बी० के बारे में पता किया। के०बी० छात्रावास में ही नहीं था। मेरा हृदय क्षुब्ध था.... अपने पराये की ठीक-ठीक पहचान कर पाना मनुष्य के लिए संभव नहीं....। निरन्तर धोखा खाने के बाद भी हर बार अपनी सोच पर दृढ रहता है... शायद यही माया का खेल है। कल के लौंडे मुझे मूर्ख बना रहे थे। मुझे इस्तेमाल कर गये थे। उमाकान्त जी को तौलने चला था.... अपने पैरों पर खड़े रह पाना भी मुश्किल हो रहा था। मैं तो निकल भागता मगर उमाकान्त जी मेरे कहने पर मेरे साथ आवे थे... वापस भी साथ ही जाना था। छात्रावास से बाहर निकल कर अपने एक परिचित के घर चला गया। काफी देर बाद ये सोचकर लौटा कि उमाकान्त जी का कार्यक्रम समाप्त हो चुका हो तो उन्हें लेकर वापस लौट चलूं। मंच पर उमाकान्त जी बैठे थे। दर्शकों की भीड़ में मै भी शामिल हो गया। थोड़ी ही देर में मंच-संचालक ने माइक पर उमाकान्त जी का सम्मानसहित परिचय देते हुए उनसे कविता पढ़ने का अनुरोध किया। उमाकान्त जी ने माइक पर बोलना प्रारंभ किया, 'मैं अपने प्रिय मित्र सुशील जी के कहने पर यहां आया हूं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी सुशील जी एक अच्छे कवि भी हैं। मैं स्वयं उनकी रचनाओं की कद्र करता हूँ। मेरा आग्रह है कि सुशील जी मंच पर आयें और अपनी कविताएं सुनायें।'

उमाकान्त जी ने हंगामा मचा दिया था। हाथ में माइक पकडे उमाकान्त

जी ने पुनः अपनी बात दोहरायी। प्रांगण में हलचल मची कौन हैं सुशील जी.. कहां हैं सुशील जी....। मैं दुविधा में पड़ गया। समझ नहीं पा रहा था कि मंच पर जाऊं अथवा न जाऊं? उसी समय किसी लड़के ने ज़ोर से चिल्लाकर कहा, 'आपके मित्र यहां पर उपस्थित नहीं है... आप कविता पढ़े मालवीय जी।'

प्रत्युत्तर में दृढ़ता के साथ गंभीर ध्वनि में उमाकान्त जी बोले, 'मै जानता हूं मेरे मित्र मेरी आवाज सुन रहे है। यदि वे तुरन्त मंच पर नहीं आते तो मैं बगैर कविता पढ़े मंच से हटकर चला जाऊंगा।'

स्पष्ट था कि यदि मैं तुरन्त मंच पर न पहुंचा तो उमाकान्त जी मंच छोड़ देंगे। अतः शीघ्रता से बढ़कर मैं मंच पर चढ़ गया। मुझे देखते ही नटखट मुस्कान पुनः उनके मुख पर छा गयी मगर अब मैं आहत नहीं था। भरी सभा में उन्होंने आत्मीयता भरा जो सम्मान मुझे दिया था.... मित्रता की जिस गहरी परिभाषा का अहसास मुझे दिया था.... मेरे अस्तित्व और प्रतिष्ठा की जिस सम्मानजनक ढंग से उन्होंने रक्षा की थी.... उसके बदले वो जीवनभर उपहास उड़ाते तो भी मुझे कोई शिकायत न होती।

उनके कहने पर मैंने एक कविता पढ़ी तो प्रशंसा करते हुए उन्होंने दूसरी कविता पढ़ने का आग्रह किया। मेरे बाद उन्होंने अपनी रचनायें पढ़ीं। हम लोग साथ-साथ ही मंच से उतरे। हम लोग स्कूटर से वापस लौटे। मेंहदौरी स्थित उनके आवास पर उन्हे छोड़ने के बाद मैं अपने घर (रसूलाबाद) आ गया।

अब हमारे संबंध अन्तरंग हो गये थे। मैं उन्हें तंत्र संबंधी अनुभव सुनाने लगा। वे रुचिपूर्वक सुनते थे। एकाग्रचित्त होकर गुनते थे। अपने विचार भी व्यक्त करते थे। अक्सर उनके घर में दरवाज़ा बन्द कर घंटों हम वार्तालाप में डूबे रहते थे। कभी-कभी गंगा किनारे शिव-मंदिर के प्रांगण में हम लोग बातें किया करते थे। यश मालवीय उस समय छोटे थे। वसु और शीबू की

तो कोई गिनती ही न थी। अपने विचार और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने मे वे वडे सतर्क रहते। इनका कहना था कि इस क्षेत्र में गति न होने के कराण उनका अधिक बोलना उचित नही है। मेरा विचार था कि तंत्र के क्षेत्र में सक्रिय सिद्ध व्यक्ति मिलना दुष्कर है। अत· आप जैसे परिपक्व ज्ञानी और अच्छे आदमी की प्रतिक्रिया मेरे लिए वहुत मूल्यवान है। उनका सान्निध्य मुझे नई प्रेरणा देता था और उनका निष्पक्ष ईमानदार विश्लेषण मेरा मार्ग प्रशस्त करता था।

■ ■ ■

हम कब मरिबे

तंत्र में उमाकान्त जी के स्वयं के अपने अनुभव भी थे। भैय्या जी (मोहम्मद तकी) जैसे सिद्ध मुस्लिम तांत्रिक का उन्हें संरक्षण प्राप्त था। भैय्या जी 'आमा आज़मी' के नाम से शायरी भी करते थे। नेत्रहीन भैय्या जी जव किताब पढ़ते या नेत्रवालों के साथ कदम दर कदम मिलाकर चलते तो आंख वालों को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो पाता था। भैय्या जी को उमाकान्त जी की भाभी स्वराज्य मालवीय राखी बांधती थी। भैय्या जी उन्हें सगी बहन मानते थे। रक्षा-बंधन पर राखी बंधवाने हर वर्ष अवश्य आते थे। भैय्या जी को मानने वाले.... चाहने वाले हजारों लोगों ने भैय्या जी की तांत्रिक शक्ति के चमत्कार देखे थे। उनके मुवक्किलों के विलक्षण क्रिया-कलापों से इलाहाबाद ही नहीं बल्कि अन्य नगरों के बहुत से लोग चमत्कृत हुए हैं। भैय्या जी के नरम हल्के शरीर को बच्चा भी उठा लेता था मगर जब भैय्या जी न चाहें तो कई पहलवान एक साथ मिलकर भी उन्हें नहीं उठा पाते थे। सिद्ध मुस्लिम फकीर के चाहने वाले हर जाति के थे। क्या हिन्दू क्या मुसलमान उनके दरबार में सभी एक जुट बैठते थे। रसूलाबाद (इलाहाबाद) में जब उनका दरबार बन्ने मियां के यहां लगता तो रातभर मज़लिस जमी रहती। हर उम्र के स्त्री-पुरुष-बच्चे भैय्या जी के दरवार में रातभर स्वेच्छा से बैठे रहते। इलाहाबाद में भैय्या जी के निवास के गिने चुने स्थान थे। श्रीमती स्वराज्य मालवीय (जिन्होंने कल्याणी देवी में स्वराज्य विविधा स्कूल की स्थापना की) एवं ए० जी० आफिस के अवकाश प्राप्त खरे साहब के यहां ही अधिकांशतः भैय्या जी ठहरते थे। उन्हें घर में रखना आसान बात न थी। आमा साहब के दर्शनार्थ हर वक्त लोगों का ताँता लगा रहता था। उनका स्वयं का खाना-सोना मुश्किल से हो पाता था।

भैय्या जी के मुवक्किल (जिन्नात) बहुत शक्तिशाली और सामर्थ्यवान् थे। वे अपने मुवक्किलों से हर तरह के काम करवाते थे। उनकी विशेषता उनका स्वार्थरहित होना था। उन्होने कभी अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का ध्यान नही रखा। महान पुरुषों का व्यक्तिगत जीवन ही नहीं होता। उनके व्यक्तिगत स्वार्थ भी समाप्त हो जाते है। नेत्रहीन भैय्या जी विशेष आन्तरिक दृष्टि से संपन्न थे। जब भैय्या जी का जिक्र चला है तो उनकी शक्ति, सामर्थ्य प्रभावित करने वाली कोई घटना का न लिखना उनकी अवमानना होगी।

दिन के ४ बजे की बात है। भैय्या जी के पास गिने-चुने लोग ही बैठे थे। किसी सामान्य सी घटना की चर्चा हो रही थी। हल्का-फुल्का माहौल था। अचानक भैय्या जी के मुख पर तमतमाहट कौंध गयी और उनके मुझ से निकला 'आज गज़ब हो जायेगा।' निमिष मात्र को तमतमाया उनका मुख शान्त हो चुका था। बैठने वालों में से भी कुछ ही लोग इस भाव को देख सके थे मगर उनकी आवाज तो लगभग सभी ने सुनी। किसी ने पूछा– ' क्या गज़ब होगा भैय्या जी।' किसी ने उत्सुकता प्रकट की, 'अभी आप क्या कह रहे थे भैय्या जी।' भैय्या जी पहले तो कुछ न बोले मगर लोगों के खोदने पर बोलना ही पड़ा,– 'फारुख आ रहा है।'

फारुख एक ऐसा व्यक्ति था जो सदैव भैय्या जी की मज़ाक उड़ाता था। हमेशा उन्हें छेड़ता रहता था। उनके सान्निध्य में घटने वाले चमत्कारों का साक्षी होते हुए भी भैय्या जी की असाधारण शक्ति, सामर्थ्य को स्वीकार नहीं करता था। कुछ लोग जाने क्यों इतने हठधर्मी और तार्किक होते हैं कि तथ्यों को स्वीकार करने में अपनी हेठी समझते हैं। फारुख के गहरे व्यंग्य-बाण तीर की तरह घुसते। कभी-कभी भैय्या जी तिलमिला भी जाते मगर फिर जाने क्या सोचकर शायद उसे नादान- नासमझ देखकर शान्त हो जाते थे। इधर कुछ दिनों से फारुख ने एक नया शिगूफ़ा छेड़ रखा था। वह जब आता भैय्या जी से एक प्रश्न पूछता– 'भैय्या जी। हम कब मरिबै?' पूछकर खिल्ल से हंस देता। मज़ाक का विचित्र अंदाज था। कोई अपने मरने की बात पूछ कर हंस दे.... यह विचित्र लगता था मगर फारुख जब तब यही

प्रश्न दोहराता। भैय्या जी उसकी वात टालकर भौतिक-जगत की सुविधाये देने की बात करते। उन्होंने कई बार कहा, 'फारुख! कोई धन्धा कर लो। रोटी कमाने का कोई जरिया बना लो। जिन्दगी वगैर धन्धा-पानी के नहीं चलती।'

फारुख हंसकर मखौल उड़ाता हुआ कहता, 'जीना ही नहीं है हमको जीना ही नहीं है भैय्या जी! बताय सके तो इतना वताय दें कि हम कब मरिवै?' उसके इस मूर्खतपूर्ण प्रश्न पर वे मौन रह जाते।

उस दिन भैय्याजी के मुख पर कौध गयी तमतमाहट और फारुख के आने की बात सुनकर मुझे लगा कि कोई असामान्य घटना घटने वाली है वरना भैय्या जी ये न कहते कि– 'आज गज़ब हो जायेगा।'

फारुख आया। पास वैठकर हंसते हुए बोला, 'भैय्या जी आपको तो पहले से ही पता होगा कि मै आ रहा हूं।' भैय्या जी के पास बैठे लोग वोले, 'हां! भैय्या जी ने कहा था कि फारुख आ रहा है।' फारुख पुनः मखौल उड़ाने वाली हंसी हंसते हुए बोला। 'भैय्या जी! दुनिया में कहां क्या हो रहा है आपको तो सब मालूम रहता है न।' भैय्या जी मौन रहे। फारुख आगे बोला, 'भैय्या जी! दीन-दुनिया की पूरी खबर रहत है न।' भैय्या जी फिर भी कुछ न बोले तो फारुख चिढाने वाले स्वर मे बोला, 'भैय्या जी! सवके सवाल का जवाब तुम्हारे पास है मगर हमरे एक सवाल का जवाव तुम नहीं दै सकतेव।'

भैय्या जी फिर भी चुप रहे। फारुख पुनः मजाक उड़ाने वाले भाव में वोला, 'कहौ तो पूछी?'

भैय्या जी गंभीर स्वर में बोले, 'पूछो' फारुख ने व्यंग्यपूर्वक हंसते हुए अपना प्रश्न प्रस्तुत किया, 'भैय्या जी हम कब मरिबै?'

भैय्या जी गरजे, 'आज!'

आज कब? फारुख ने पुनः हंसते हुए पूछा 'आज रात।' भैय्या जी ने पुनः दृढ़ स्वर में कहा 'हम कैसे मरब भैय्या जी।' फारुख ने हंसते हुए पूछा। सुनने वाले सिहर गये थे मगर फारुख पर कोई असर न था। वह उन वातों

को इतना हल्का समझ रहा था जैसे कोई बात ही न हो। लोग आश्चर्यचकित हो वार्तालाप सुन रहे थे। लोगों ने भैय्या जी का औदार्य देखा था। करुणा देखी थी। क्षमा जानी थी। रौद्र रूप कभी न देखा था। फिर फारुख की उद्दंडता तो देखिये ... लगातार प्रश्न पर प्रश्न करता बात बढाता चला जा रहा था।

भैय्या जी पूर्ववत् दृढ़ता से बोले, 'ट्रक से दबकर मरोगे।'

वातावरण स्तव्ध था मगर फारुख उसी तरंग में बह रहा था बोला 'हम यहाँ से उठकर अपने घर चले जायेंगे... फिर घर से निकलेंगे ही नही तो ट्रक से दबकर कैसे मरेंगे?

फारुख लूकरगंज में रहता था। हाईकोर्ट की ओर से चौक जाने के लिए ओवर ब्रिज बना है। इसे खुसरूबाग वाला ब्रिज भी कहते है। ओवर ब्रिज से लगी हुई नीचे एक सड़क है जिसके किनारों पर मकान बने हैं। उन्ही में से एक में फारुख रहता था। फारुख के उठकर चले जाने के बाद भैय्या जी तो सामान्य थे। अन्य लोगों के मन में हलचल थी। फिर भी इस विषय पर किसी ने कोई बात न की। मेरे मन में कौतूहल था कि देखें फारुख कैसे मरता है। फकीर, सिद्ध तांत्रिक, योगी और ऋषि के मुख से निकले हुए वाक्य सत्य उतरते हैं। उनके मुख से निकले हुई बात की शक्ति ग्रह-नक्षत्रों की शक्ति से बड़ी होती है। उनकी वाणी क्रियान्वित करने को ग्रह-नक्षत्र अपनी गति बदल देते हैं।

दूसरे दिन कार्यालय गया। यादव की चाय की दुकान पर सभी लोग आये मगर जमील (सैयद अली इरशाद नकवी) अनुपस्थित थे। १२-३० बजे तक मेरे मन में जमील का खयाल था मगर जमील नहीं आये। जमील लगभग २ बजे आये। बड़े परेशान थे। पूछने पर बताया कि शकील भाई (जमील के बड़े भाई) की ट्रक का रात एक्सीडेन्ट हो गया। उसी चक्कर में परेशान रहा। उस समय शकील भाई साहब की किंग्स ट्रांसपोर्ट कम्पनी थी। किंग्स ट्रांसपोर्ट कम्पनी का आफिस नूरुल्ला रोड पर प्रयाग होटल के सामने था। अकेले भाई होने के कारण वक्त-बे-वक्त जमील को उत्तरदायित्व का

निर्वाह करना ही पड़ता था। जमील ने हैरत से बताया कि ऐसा एक्सीडेन्ट न पहले कभी हुआ और न भविष्य में शायद होगा। खुसरूबाग ओवर ब्रिज पर रात २ बजे ट्रक-ड्राइवर गाड़ी का संतुलन संभाल नहीं पाया और ट्रक ब्रिज की रेलिंग तोड़ती हुई नीचे गिरी।

सामान्यतः ट्रक को ब्रिज के नीचे लूकरगंज जाती सड़क पर गिरना चाहिये था मगर सड़क पर बिजली के खंभों में लगे बिजली के तारों ने घटना का रुख बदल दिया। ट्रक रेलिंग तोड़ती हुई बिजली के तारों पर गिरी। बिजली के तारों ने ट्रक को उछाल फेंका तो ट्रक के साथ लगे मकान की छत पर गिरी गर्मी के दिन थे। फारुख, भैया जी की बात झूठ साबित करने के लिये घर के बाहर न निकला था। गर्मी से राहत पाने के लिए रात में छत पर सो रहा था। ट्रक ठीक उसके ऊपर ही गिरी। संयोग तो देखिये कि फारुख को शकील भाई की किंग्स ट्रांसपोर्ट कम्पनी की ट्रक के नीचे ही मरना था? किसी और ट्रक से मरता तो शायद मुझे खबर ही न लगती या बहुत देर में लगती। शकील भाई साहब और जमील को आज यह पता चलेगा कि उनके ट्रक-ड्राइवर की आंखों के सामने उसी जगह धुन्ध क्यों छायी? उनकी ट्रक तो भैय्या जी की वाणी चरितार्थ करने के लिए गिरी थी।

■ ■ ■

चलने लगा घड़ा

अब हम अकसर मिलते थे। हमारी वार्ता का विषय तंत्र ही रहता था। अधिकांशतः मैं ही बोलता। अपने जीवन में उतरने वाले अनुभवों को बताता। उमाकान्त जी ने भी अपने जीवन के अनुभव बताये थे। आज लोक हित में अग्रज-मित्र के कुछ गोपनीय अनुभव सार्वजनिक बनाने जा रहा हूँ।

उमाकान्त जी अपनी भाभी (श्रीमती स्वराज्य मालवीय) को मां की तरह मानते थे। वो भी उमाकान्त जी को स्नेह देती थीं और उन पर विशेष अधिकार समझती थीं। उमकान्त जी उनकी बातों को सदैव मान लिया करते थे। उमाकान्त जी के आत्मीय स्वजन कभी-कभी उनकी इस अतिरिक्त कर्त्तव्यपरायणता से चिढ़ भी जाते थे भाभी के प्रति अपनी अतिरिक्त सहिष्णुता, सहनशीलता एवं कर्तव्यपरायणता का रहस्य एक दिन उमाकान्त जी ने मेरे सामने प्रकट किया था।

उमाकान्त जी छोटे थे तभी बड़े भाई की शादी हो गयी थी। श्रीमती स्वराज मालवीय ने प्रारंभ से ही उमकान्त जी को पुत्रवत् ममता दी। स्नेहिल आत्मीय संबंध दिन-ब-दिन प्रगाढ़ होता जा रहा था। उन्हीं दिनों उमाकान्त जी बीमार पड़े। उस समय उमाकान्त जी १७-१८ वर्ष के थे। उन्हें हर समय बुखार रहता था। वैद्य जी का इलाज हुआ, आयुर्वेद के कई नुस्खों का प्रयोग हुआ, मगर बुखार ठीक नहीं हुआ। एलोपैथिक इलाज हुआ। गर्म दवाइयों के प्रभाव से ताप कम हो जाता था.... कभी-कभी उतर भी जाता था मगर फिर चढ़ जाता था। आरंभ में जो दवा लाभदायक लगती धीरे-धीरे वही दवा व्यर्थ हो जाती। लम्बी बीमारी और दवाओं के कुप्रभाव से वो निर्बल हो रहे थे। मुख की कान्ति मर गयी थी। मन भी टूट गया

था। महीनों की बीमारी ने उमाकान्त जी को तोड़ दिया था। उन्होंने बताया था–'ऐसा लगता था कि अब कभी ठीक न हो सकूंगा। मन में वीरानी छा गयी थी। कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। अज्ञात असुरक्षा का भाव मन में घर कर गया था। दिन प्रतिदिन मुझे अपनी मौत का विश्वास होता जा रहा था। मेरी अस्वस्थता से भाभी बहुत परेशान थीं। उनका सुख-चैन समाप्त हो गया था। समय-समय पर दवा खिलाना.... पथ्य देना.... फिर घर गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाना.... भाभी के सर पर काम का बोझ बहुत बढ़ गया था। ये सब भी मुझे विचलित न करता यदि दवाई का मुझ पर कोई प्रभाव दिखायी देता। मेरी अस्वस्थता मेरे लिए तो दुखदायी थी ही भाभी के लिए भी कम पीड़ादायक न थी। लोग तरह-तरह की बातें करते। कोई भाभी को पंडित से पूजा करवाने को कहता तो कोई किसी मौलवी से गंडा ताबीज़ बंधवाने की सलाह देता। लोग कहते कि ऊपरी फेर है। 'ये साधारण बुखार नहीं है। किसी प्रेतात्मा का प्रभाव है।' मुझे इन बातों पर कोई आस्था न थी। मुझे मृतात्माओं के अस्तित्व का भी विश्वास न था तो उनके प्रकोप की बात हास्यास्पद थी; मगर भाभी के स्नेह के कारण उनकी किसी बात का विरोध न करता। वो जो देतीं पहन लेता.... जो खिलातीं खा लेता। कभी इस मंदिर का प्रसाद... कभी उस मजार की सिन्नी....। मैं जानता था कि मुझे अब कोई भी दवा-दुआ ठीक न कर पायेगी। उत्तरोत्तर मैं मृत्यु की ओर बढ़ रहा था।'

'एक दिन कोई फकीर द्वार पर आया। मैं सो रहा था। फकीर की बुलंद आवाज से जग गया। वो जोर-जोर से ललकार रहा था– 'कोई है, जो इस फकीर का पेट भर दे।' घर के काम-काज में उलझी भाभी ने पहले तो उसकी आवाज सुनी ही नहीं मगर जब बुलन्द आवाज में कई बार वो दहाड़ा तो हड़बड़ाती हुई, बाहर निकलीं, 'क्या चाहिये बाबा?' उन्होंने फकीर से पूछा।

'खाना खिला दे माई। तेरा भला होगा।' फकीर ने दृढ़ता से कहा। उसकी बात पर भाभी बोलीं, 'खाना तो दे दूंगी बाबा मगर अब भला क्या

होगा....।' कहते-कहते भाभी पलटीं। उनकी आंखों की कोर गीली हो गयी थी। घर में जो कुछ भी खाना बचा था... लेकर बाहर आयीं और फकीर को दे दिया। खाना देकर जब वो पलटने लगीं तो निमिष मात्र को फकीर की दृष्टि से दृष्टि टकरा गयी। फकीर सामान्य भिखारी नहीं था। वो पहुंचा हुआ फकीर था। उसने परेशानी समझ ली और पूछा, 'मां! तुम्हें कोई कष्ट है क्या?' भाभी ठिठक गयीं। फकीर ने मर्म पकड़ लिया था। भावुक होकर बोलीं, 'उमा बीमार है.... कोई दवाई फायदा ही नहीं करती... किसी भी तरह तबियत ठीक नहीं हो रही।'

'क्या मैं मरीज़ को देख सकता हूँ।' फकीर ने गंभीर स्वर में कहा। इसी समय अन्दर भाभी का डेढ़ वर्ष का बालक चिल्लाया। वो फकीर को ठहरने के लिए कहकर अन्दर चली गयीं और बच्चे को गोद में लेकर बाहर आयीं। मै बाहर के कमरे में ही लेटा था। वो फकीर को उस कमरे में ले गयीं। मैं तो जग ही रहा था। उठ कर बैठ गया। फकीर की दृष्टि से दृष्टि मिलते ही पूरे शरीर में फुरहरी सी दौड़ गयी। उसकी आंखें आग के अंगारे की तरह जल रही थीं।' उमाकान्त जी ने बताया था– 'सुशील जी, फकीर की वे जलती हुई आंखों की याद आज भी इस तरह ताजी है जैसे कल की ही बात हो। उसकी नज़रों से नजर मिलाये रहने की मेरी हिम्मत न थी। अतः मैंने नजरें हटा कर सर झुका लिया। फकीर देर तक मुझे गौर से देखता बुदबुदाता रहा। शायद वह कोई मंत्र पढ़ रहा था। फिर उसने घड़ा और अन्य पूजन सामग्री मांगी। भाभी जी ने अगरबत्ती, धूपबत्ती, घड़ा आदि जो कुछ भी उसने मांगा तुरन्त हाजिर कर दिया। फकीर ने उमाकान्त जी की चारपायी के पास घड़ा रखा उसके ऊपर लोटा। लोटे के ऊपर एक कटोरी में चावल आदि रखकर उसके ऊपर दिया जलाकर रख दिया। फर्श पर आटे से विचित्र आकृति बनायी थी। उसी आकृति पर बैठकर उसने लोबान जलाया और अपना पूजन आरंभ किया।' उमाकान्त जी बता रहे थे– 'मुझे उसकी पूजा पर कोई आस्था न थी फिर भी उत्सुकता से उसके क्रिया-कलाप देख रहा था। मैं उसकी आंखों से आंखें नहीं मिला सकता था, बाकी उसकी उपस्थिति, उसके कर्मकांड से मुझे कोई परेशानी न थी। मोहल्ले की बहुत

सी औरतें आ गयी थीं। सब चुपचाप बैठकर फकीर की कार्यवाही देख रही थीं। रह-रह कर मेरी दृष्टि घड़े पर जलते हुए दिये की ओर चली जाती।'

'मुझे लगता जैसे दिये की लौ बार-बार मेरा ध्यान आकर्षित कर रही है। अचानक मुझे दिये की लौ में कंपन दृष्टिगोचर हुआ। दिये की लौ कंपकंपा रही थी। कंपन बढ़ने लगा और घड़ा हिलने लगा। सब लोग विस्मय से देख रहे थे कि घड़ा स्वयं हिल रहा है। फिर धीरे-धीरे घूमने लगा। हम सब लोग दम साधे घड़े को घूमते हुए देख रहे थे। फकीर घड़े से दूर था। किसी तरह की कोई बाजीगरी न थी। घर हमारा था और फकीर ने जो कुछ भी किया था हमारे सामने ही किया था। किसी तरह का छल, फरेब, धोखा संभव न था। घड़ा घूमते हुए चलने लगा। घूम-घूम कर चलते हुए घड़े ने मेरी चारपायी के चारों ओर घूमकर एक चक्कर लगाया। फिर घड़ा थम गया। फकीर ने हाथ में चावल लेकर मंत्र पढ़कर फूंका और मंत्र पढ़ते हुए घड़े पर फेंका। दिये की लौल कंपकंपा कर ठहर गयी। पुनः फकीर ने अपनी प्रक्रिया दोहरायी मगर संभवतः अपेक्षित फल नहीं निकला। फिर फकीर ने चारों तरफ घूम-घूम कर जल छिड़का मानो पूरे स्थल को अभिमंत्रित जल से शुद्ध कर रहा हो। इसके बाद बैठकर हाथ में चावल लेकर मंत्र पढ़ते हुए घड़े की ओर फेंका। इस बार दिये की लौ कंपकंपा कर बुझ गयी। फकीर उठ खड़ा हुआ। पलट कर वापस चल दिया जब सब लोग समझें वह बाहर के दरवाजे तक पहुंच गया था।। भाभी गोद में अपने डेढ़ वर्ष के बच्चे को लिये हुए लपकीं और फकीर का रास्ता रोक कर बोलीं,' 'क्या हुआ है उमा को? वो ठीक हो जायेगा न?'

फकीर ने मौन रहकर सर नीचे झुका लिया। भाभी घबराकर चींखीं, 'आप बोलते क्यों नहीं? क्या हुआ है मेरे उमा को?

फकीर ने सर उठाकर दृढ़ स्वर में कहा, 'तुम्हारे उमा पर प्रेत का साया है।'

सुनते ही भाभी बौखला कर चीखीं 'क्या चाहता है वह प्रेत? क्यों आया है उमा पर?'

'प्रेत जान चाहता है।' फकीर को सत्य उगलना ही पड़ा, 'जान लिये बगैर प्रेत नही जायेगा।'

'जान लेना है तो इस बच्चे की ले ले।' भाभी जी के मुंह से तुरन्त निकला। उन्होंने अपनी गोद के बच्चे की ओर संकेत करते हुआ कहा, 'मेरे इतने बड़े बच्चे उमा की जान चली गयी तो मैं भी न जी सकूंगी।' कहते-कहते वो फूट-फूट कर रो पड़ीं। सौतेली मां अपने बच्चे की कुर्बानी सौतेले बच्चे के लिए दे सकती है। पन्ना दाई ने उदयसिह के लिए अपने बच्चे की कुर्बानी दी थी। वे सब मां थीं। दाई मां ने उदयसिह को अपने बच्चे के साथ-साथ पाला था... ममता दी थी... दूध पिलाया था। फिर भी उसकी कुर्बानी इतिहास में एक उदाहरण की तरह याद की जाती है। स्वराज्य जी तो मात्र भाभी थीं,.... सिर्फ भाभी, जो अपने देवर के लिए अपनी ममता की बलि देने को सहर्ष तैयार हो गयी थीं। फकीर कुछ देर तक स्वराज्य जी को और उनकी गोद के बच्चे को देखता रहा। फिर चला गया। उसके जाने के बाद धीरे-धीरे उमाकान्त जी ठीक होने लगे।

घटना बताते-बाते उमाकान्त जी की आवाज रुंध गयी, 'मैं ठीक हो गया और मेरा भतीजा... भाभी का वह बच्चा मर गया।'

■ ■ ■

दक्षिणेश्वर की अनोखी यात्रा

तंत्र आत्मशुद्धि का मार्ग है। तन को यंत्र की तरह प्रयोग कर आत्मा को शुद्ध करते हुए परम शुद्धतम (मोक्ष) अवस्था को प्राप्त करना ही तंत्र का मूलभूत उद्‌देश्य है। तांत्रिक परमज्ञान (परमात्मा) की अभिलाषा में निकला हुआ एक यात्री है जो भौतिक आधि-भौतिक उपादानो से अपनी कामनाओं को तृप्त करते हुए निवृत्ति के मार्ग पर अग्रसर होता है। तांत्रिक लौकिक समृद्धियों को भोगते हुए... तृप्त होते हुए पारलौकिक जगत में आगे बढ़ता रहता है।

तंत्र में मूलतः ३ श्रेणियां हैं। प्रथम, पंचमकारों से युक्त स्थूल जगत में पंच तत्वों की स्थूल उपासना करने वाला पशु भाव का साधक जिसका चरमोत्कर्ष औघड़ है। दूसरे, पंचमकारों के प्रतीकों से सूक्ष्म जगत में सूक्ष्म शक्तियों की आराधना करने वाला वीर भाव का साधक जिसका चरमोत्कर्ष राजयोग है। तीसरी और अन्तिम स्थिति है–दिव्य भाव इष्ट को निरंतर भावांजलि देने वाला दिव्य भाव का साधक जो अन्ततः इष्ट में पूर्णतया समर्पित होकर इष्ट से एकाकार (परमात्मा) हो जाता है। शक्ति और सामर्थ्य का अर्जन और इष्ट के चरणों में समर्पण.... निरंतर अर्जन और निरंतर समर्पण.... यह प्रक्रिया दीपक की लौ जैसी होती है यह हर पल मरने और हर पल जीने जैसा है। यात्रा इष्ट में समाहित होने पर ही समाप्त होती है स्वयं की समाप्ति और इष्ट की प्राप्ति पृथक-पृथक घटना नहीं बल्कि एक सिक्के के दो पहलू हैं।

कलकत्ता के ठाकुर राम कृष्ण परमहंस दिव्य भाव के सिद्ध तांत्रिक थे। दक्षिणेश्वर में आदि शक्ति मां काली स्थूल रूप में प्रगट होकर ठाकुर के हाथ से भोग ग्रहण करती थीं। माँ और ठाकुर में क़ोई अन्तर न था। कहते हैं

मंदिर मे मां की पूजा-अर्चना कर निकले ठाकुर के सिर के बालों में अक्सर सिन्दूर और फूल देखा जाता। लोग आश्चर्यवश ठाकुर से प्रश्न करते– 'ये फूल सिन्दूर आपके सिर के बालों में कैसे?'

ठाकुर अपनी धुन में कहते 'माई जाने'। कई बार ऐसा देख कर लोगों को कुतूहल हुआ। शंका उठी कि ठाकुर पूजा का थाल लेकर मन्दिर में मां काली की पूजा करने जाते हैं... आखिर उनके बालों में पूजन सामग्री कैसे आ जाती है?

ठाकुर मां की पूजा नितान्त एकान्त में करते थे। मन्दिर का दरवाजा बन्द रहता। अन्दर कोई और नही रहता था। एक बार लोगों ने उत्सुकतावश दरवाजे के छेद से झांक कर देखा। माँ के सामने बैठे ठाकुर भावावेश में जाने क्या बडबड़ा रहे थे। उनकी आवाजें तो कोई न सुन पाया मगर फूल अक्षत उठाकर उछालते देखा। कुछ माँ पर चढ़ रहा था... कुछ उनके स्वयं के सिर पर गिर रहा था। यह दृश्य देखकर लोग क्रोधित हो उठे। हर ओर से आवाज आने लगी–ठाकुर भ्रष्ट है... पतित है.... मां की पूजन सामग्री स्वयं पर चढ़ाने वाले को लोग और क्या समझते? साधारण भक्त कैसे समझता कि ठाकुर मां से एकाकार हो चुके हैं।

रानी रासमणि को खबर दी गई। लोगों ने ठाकुर का अपमान कर मंदिर से बाहर खदेड दिया। निर्विकार भाव से ठाकुर गंगा के किनारे-किनारे चलते चले गए। कहते है रात में रानी रासमणि के स्वप्न में काली प्रगट हुई। उन्होंने रानी को ठाकुर को बुलाने और मंदिर का पुजारी बनाने का आदेश दिया। प्रातः रानी ने जन-साधारण को बुलाया और अपना स्वप्न बताया फिर रानी ने कहा – 'जब मां काली को ठाकुर की पूजा स्वीकार है तो एतराज करने वाले हम कौन?' लोगों को बात समझ में आ गई। लोग ठाकुर को ढूंढ़ने निकले। दिन भर लोग ठाकुर को खोजते रहे। शाम ढले दूर गंगा किनारे किसी वृक्ष के नीचे मिले ठाकुर! लोग मनुहार करके पुनः ले आए।

ठाकुर राम कृष्ण परमहंस इस युग की श्रेष्ठतम विभूति हैं। सरल, सहज, निर्मल मन के, शारीरिक वेश-भूषा में नितान्त साधारण दिखने वाले ठाकुर

इस युग की शुद्धतम आत्मा हैं। कलकत्ता मे गंगा किनारे रानी रासमणि द्वारा बनवाया गया मां काली का मंदिर ठाकुर का पूजन स्थल था। वहीं मंदिर प्रांगण में ही एक कोने में ठाकुर का कमरा भी बना है। ठाकुर कब कमरे में रहते थे और कब मन्दिर में.... निश्चय पूर्वक कोई नही कह सकता। सन् १८४७ में, भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के ठीक सौ वर्ष पहले रानी रासमणि ने यह मंदिर वनवाया। माँ काली के मंदिर-निर्माण का अपना एक इतिहास है। एक वार रानी के मन में काशी-विश्वनाथ के दर्शन की प्रेरणा उठी। यात्रा की सारी तैयारियॉ की गई। प्रस्थान के ठीक एक दिन पहले रात में रानी को एक स्वप्न आया। स्वप्न में मां अन्नपूर्णा प्रगट हुई और उन्होंने रानी को गंगा किनारे मंदिर बनवाने का आदेश दिया। फलतः वाराणसी यात्रा न हो सकी। गंगा किनारे ६० बीघा जमीन खरीदकर वहाँ मंदिर निर्माण कराया गया।

बहुत कम लोग जानते हैं कि हज़ारों वर्ष पहले राजा बनराज को भी एक स्वप्न में भगवान शिव ने दर्शन दिया था और शिव के आदेश पर राजा ने वहाँ शिव मंदिर का निर्माण कराया। वहां भगवान शिव दखिनेश्वर के नाम से जागृत हुए थे। इसी कराण उस स्थल का नाम दखिनेश्वर रखा गया। गंगा किनारे मंदिर प्रांगण में बने हुए बारह शिव मंदिरों में से एक जोगेश्वर शिव हैं। बाकी ग्यारह शिव-मंदिर शिव के रुद्र रूप हैं। शिव-मंदिर और मां का मंदिर शिव और शक्ति के मिलन का अभूतपूर्व संयोग है। अन्यत्र कहीं ऐसा दृष्टान्त मिलना संभव नहीं है जहाँ पर शिव और शक्ति अपनी शुद्धतम ऊर्जा और उष्मा के साथ क्रियाशील हों और जगत में अपनी कृपा और भक्ति की शक्तिशाली तरंगें प्रवाहित कर रहे हो। ठाकुर कहते हैं सभी धर्मों में छिपी हुई सत्ता एक ही है। वहीं पर मुस्लिम सन्त गाज़ी साहब की दरगाह भी बनी हुई है। ठाकुर ने सदैव गाजी मियां की इज्ज़त की। मुस्लिम समाज उस दरगाह पर सिज़दा करने जाता था। ठाकुर ने कभी भी दरगाह के पूजन में कोई कमी नहीं होने दी। आज भी लोग दरगाह पर सिज़दा करने जाते हैं। ठाकुर कहते थे शिव, माँ काली, कृष्ण, अल्लाह एक ही सत्ता के भिन्न-भिन्न नाम हैं। मेरी समझ में इनके साथ ठाकुर का नाम भी

जोड़ा जाना चाहिए। ठाकुर इनसे एकाकार हो चुके थे। कुछ लोग तो ठाकुर को ईश्वर का अवतार भी मानते हैं। ये अवतार हों या न हों ये निर्विवाद सत्य है कि ठाकुर ईश्वरत्व को उपलब्ध थे। उन्होंने दखिनेश्वर में घनीभूत ऊर्जा का जो पुंज छोड़ा वह आज भी पूरी तरह प्रस्फुटित नहीं हो पाया है। धीरे-धीरे समय उसे प्रवाहित कर रहा है, प्राणविक कैप्सूल की तरह ठाकुर का छोड़ा हुआ बीज वृक्ष में परिवर्तित होकर दूर-दूर तक अपनी शाखाएं फैलाएगा।

मेरी एक मामी कलकत्ता वासिनी है। विवाह पूर्व वे बंगाली थीं। मजूमदार परिवार की बंगाली लड़की ने फौज में कार्यरत मेरे कैप्टेन मामा से प्रेम-विवाह किया था। यह प्रेम विवाह परिवारों द्वारा स्वीकृत और हिन्दू संस्कारों द्वारा संपन्न हुआ था। विवाह के दस वर्ष के अन्दर ही मामा एक पुत्र और पुत्री छोड़कर काल के गाल में समा गए। मामी अपने बच्चों के साथ ठाकुरगाछी (कलकत्ता) के पास सी०आई०टी० स्कीम में एक फ्लैट खरीद कर रहने लगीं। उनकी इच्छा थी कि मैं कलकत्ता आऊँ और सपरिवार उनके साथ कुछ दिन व्यतीत करूँ। पत्नी तैयार हो गई। लड़कों की परीक्षा चल रही थी। अतः मैं रुक गया। पत्नी और शस्या (पुत्री) को मौसेरे भाई के साथ कलकत्ता भेज दिया। मैने ५-६ दिन बाद पावस, टिंकू (लड़कों) के साथ कलकत्ता जाने का बाम्बे मेल में आरक्षण करवाया। ११ बजे रात को इलाहाबाद से चलकर दूसरे दिन ११ बजे कलकत्ता पहुंचा। मामी ने हृदय से स्वागत किया।

मेरा मन तो ठाकुर में ही लीन था। नरेन्द्र के गुरु..... कैसे होगे! शिवत्व को उपलब्ध कैसे लगते होंगे ठाकुर! साधारण सी वेश-भूषा में सामान्य शरीर में जागृत आत्मा के साथ कैसे दिखते होंगे ठाकुर! आँखों से स्नेह की तरह बौछारों से जन-मानस को भिगोते कैसे चलते होंगे ठाकुर! अपने स्पर्श मात्र से नरेन्द्र के ज्ञान-चक्षु में स्फुरण (शक्तिपाद) उत्पन्न कर देने वाले कितने सामर्थ्यवान होंगे ठाकुर! निज दर्शन दे दुखी जनों का दुख-संन्ताप हर लेने वाले कितने करुणावान होंगे ठाकुर! धर्म का उपदेश देने वाले माया-मोह के कीचड़ में स्वयं कमल-सा कैसे खिलते होंगे ठाकुर! जिसका स्मरण मात्र हृदय

को शान्त और आनन्दित कर देता है उस आदि शक्ति जगत-जननी मां को जागृत कर स्वयं अपने हाँथों से कैसे भोग कराते होंगे ठाकुर ! गंगा-स्नान कर भीगी धोती पहने हाथ में गंगा जल का पात्र ले आते हुए जगेश्वर का अभिषेक करते हुए कैसे लगते होंगे ठाकुर! रुद्रों को अपने हॉथों स्नान कराते हुए कैसे दिखते होंगे ठाकुर! हृदय-कमल पर माँ को विराजमान कर निरन्तर भावांजलि देते हुए कैसे चमकते होंगे ठाकुर ! परम सुवासिनी, मदमाती सुगन्धमयी अन्नपूर्णा के आंचल में कितना महकते होंगे ठाकुर! परात्पर ब्रह्म की गोद में कितना मुदित रहते होंगे ठाकुर!

कितने भाग्यशाली हैं वे लोग जिन्हें ठाकुर का सान्निध्य मिला। धन्य हैं वे जीव जिन्हें ठाकुर का स्पर्श मिला! खुल गए उनके भाग्य जिन्हें ठाकुर का सौहार्द मिला! मुक्त हो गई वे जीवात्माएं जिन पर ठाकुर का प्रेम बरसा! पवित्र हो गई वो भूमि जिस पर ठाकुर का चरण पड़ा! पावन हो गया वह गाँव जिसने ठाकुर का संवाद सुना! सुगन्धित हो गया वह वातावरण जिसको ठाकुर का श्वास मिला! तीर्थ हो गया वह स्थान जहाँ ठाकुर का दिन-रात कटा! कल उस पवित्र स्थल पर ठाकुर के वायवीय रूप को मैं भी महसूस कर सकूँगा....! एक गहरा उच्छवास भरते हुए मैंने सोचा।

दूसरे दिन प्रातः जल्दी निकलना चाहता था। मुझे दखिनेश्वर जाने का मार्ग पता न था। मामी से चर्चा की। मामी मुझे अकेले नहीं जाने देना चाहती थीं। वो स्वयं भी साथ चलना चाहती थीं। उन्हें मेरे भटक जाने का डर था। मैंने यह कहकर टाला कि आप सब (पत्नी, बच्चों को) किसी और दिन साथ चलेंगे। आज मुझे अकेले ही जाने दीजिए। लगभग ८.३० बजे मैं घर से निकला। विधानसभा रोड का लोकल ट्रेन का स्टेशन मानिकतल्ला से लगभग १ कि०मी० दूर है। जल्दी जल्दी स्टेशन पहुँचा। स्टेशन पर पता चला कि 'डंकिनी लोकल' दखिनेश्वर को जाती है। मैंने टिकट खरीदा और प्लेटफार्म पूछा। पता नहीं वहाँ का क्या तरीका है कि कौन-सी ट्रेन किस प्लेटफार्म पर आएगी ये तय नहीं है। ट्रेन आते दिखेगी.... तभी लाउडस्पीकर से बताया जाएगा कि आने वाली ट्रेन कौन-सी है और किस प्लेटफार्म पर

आएगी। अतः लोग प्लेटफार्म पर नहीं ओवर-ब्रिज पर खड़े रहते हैं। ट्रेन और प्लेटफार्म का एनाउन्समेंट सुनकर प्लेटफार्म की ओर दौड़ पड़ते हैं। मैं भी ओवर-ब्रिज पर खड़ा हो गया। मेरी समस्या यह थी कि बंगला भाषा ठीक से नहीं आती और एनाउन्समेंट बंगला भाषा में ही होता है। मुझे डर लगा–कहीं ऐसा न हो कि मैं समझ न पाऊँ और ट्रेन आकर निकल जाए। ट्रेन मुश्किल से एक-डेढ़ मिनट ही रुकती है। इतने थोड़ समय में ही यात्री चढ़ते उतरते हैं। प्रतिदिन आने जाने वालों के लिए कोई परेशानी न थी। सभी अभ्यस्त थे। मेरे लिए तो अकेले लोकल ट्रेन पकड़ने का यह पहला अवसर था। हमेशा कोई न कोई मेरे साथ रहता ही है। शंका संकोचवश, सहायता मांगने में झिझक रहा था। फिर एक बंगाली मोशाय से अंग्रेजी में अपनी मुश्किल बताई। उन्होंने सहर्ष सहायता प्रदान की। उन्हें भी उसी ट्रेन से जाना था। उन्होंने मुझे अपने साथ ही रखा। ट्रेन आने पर भीड़ में ट्रेन में चढ़ने में उन्होंने सहायता भी की। फिर धड़ाधड़ खाली ओर भरती हुई ट्रेन की बर्थ में मेरे लिए जगह रोककर मुझे बिठाया। दमदम स्टेशन पर उन्हें उतरना था। उतरने से पहले उन्होंने मुझे बहुत-सी हिदायतें दीं। दखिनेश्वर स्टेशन काफी ऊँचाई पर है। आबादी नीचे है। पचास से अधिक सीढ़ियाँ उतरनी पड़ती हैं। फिर बाएं हाँथ घूमकर सीधे चलते चले जाना काली मंदिर पहुंच जाओगे। दमदम स्टेशन पर उन भद्र बंगाली मोशाय के उतर जाने के बाद फिर ठाकुर का अहसास मेरे मन-प्राण में उतरने लगा। मुझे लग रहा था–मैं स्वयं नहीं आया। ठाकुर ने मुझे बुलाया है। उनकी प्रेरणा ने ही सारी सुविधाएं जुटाई। सम्मोहित-सा खिंचा चला जा रहा था दखिनेश्वर की ओर। खिड़की के बाहर ठाकुर का हंसता हुआ मुख नज़र आता.... तो कभी दूर बैठा कोई ठाकुर-सा लगता। मैं कहीं पागल तो नहीं हो रहा हूँ.... मन ने स्वयं को झकझोरा मगर फिर ठाकुर के अहसास की मादक तंद्रा मेरी चेतना पर छा गई और मैं ठाकुर के नशे में डूब गया। अचानक पास बैठे महाशय ने याद दिलाया– दखिनेश्वर आ रहा है। मुझे होश आया वरना दखिनेश्वर आ कर निकल भी जाता और शायद मैं न उतर पाता। ट्रेन से उतरते हुए मुझे लगा– उतरने की याद दिलाने वाला भी ठाकुर का ही भेजा हुआ आदमी

था। कितने सामर्थ्यवान हैं ठाकुर! कितने करुणावान हैं ठाकुर! ईश्वर की कृपा सब पर समान रूप से बरसती है। हम जितना स्वयं को बचाते हैं... अपनी सुरक्षा के.... उन्नति के उपाय करते हैं उतना ही प्रभु से दूर होते जाते हैं। प्रभु उतना ही संभालते हैं जितना हम उनपर निर्भर होते हैं। संसार में सफलता के लिए स्वयं पर भरोसा चाहिए। आध्यात्मिक जगत मे प्रगति के लिए स्वयं का समर्पण चाहिए। जितना गहरा समर्पण होगा उतनी ही ऊँचाई पर पहुँचेंगे।

प्लेटफार्म पर उतर कर मैने चारों ओर देखा। एक अजब-सी सनसनाहट मन-मस्तिष्क में हो रही थी। हर तरफ ठाकुर का अहसास जारी था। 'मैं आ रहा हूँ ठाकुर' सीढ़ियाँ उतरते हुए हठात् मेरे मुँह से निकला। चौंककर इधर-उधर देखा–किसी ने सुना तो नहीं वरना लोग पागल समझेंगे मन ने तुरन्त प्रत्युत्तर में कहा–'यहॉ कोई पहचानने वाला तो है नहीं.... लोग पागल समझें भी तो 'क्या?'

ध्यान की गहराइयों में डूबकर जिस आनन्द की प्राप्त होती है वह आनन्द सहज चेतनावस्था में ही उपलब्ध हो रहा था। चेतना आनन्द के नशे में धुत्त थी। मंदिर की ओर बढ़ते मेरे कदम किसी नशेड़ी के कदमों की तरह आड़े-तिरछे पड़ रहे थे। मैने अपनी चेतना पर से स्वयं का नियंत्रण हटा लिया था। एक ही रहेगा– 'चाहे ठाकुर की तंद्रा या मै' ठाकुर को पूरी तरह महसूस करने के लिए आवश्यक था कि मैं न रहूँ। कबीर ने शायद इसी स्थिति के लिए लिखा है– ' प्रेम गली अति सांकरी ता में दोउ न समाय।'

कैसे चलकर मंदिर के मुख्य दरवाजे से घुसा मुझे याद नहीं। मुझे तो होश तब आया जब मंदिर प्रांगण में धूप से चटकती फर्श में मेरे तलवे जलने लगे। दौड़कर राधा-कृष्ण के मंदिर में पनाह ली। मंगलवार का दिन था। माँ काली के दर्शनार्थियों की लाइन लगी थी। लगभग डेढ़ सौ लोग तो जरूर रहे होंगे। लाइन में खड़े होने की न तो ताकत थी और न इच्छा। मन तो किसी कोने में बैठकर ध्यान में डूब जाने को कह रहा था। पैरों को राहत मिलते ही मैं मन्दिर के सामने बनी रंगशाला में गया। रंगशाला में थोड़ा आगे

जाने पर मैंने पलटकर देखा तो हृदय खिल उठा। ३०-४० फिट दूर से भी माँ का ओजस्वी दर्शन मेरे मन-प्राण को मथने के लिए पर्याप्त था। पूरा स्थल ठाकुर के अहसास से ओतप्रोत था। यहाँ ठाकुर..... वहाँ ठाकुर.... इधर ठाकुर.... उधर ठाकुर.... मुझे तो हर तरफ ठाकुर के ही दर्शन हो रहे थे। मां की आरती करता पंडित मुझे ठाकुर-सा लगता.... तो कभी गंगा स्नान कर गंगाजल का पात्र हाँथ में लिए धोती-बनियाइन पहने कोई मोशाय मुझे ठाकुर से लगते। पीछे पलथी मारे दाढ़ी बढाए ध्यानमग्न साधु मुझे ठाकुर-सा लगता तो कभी दर्शनार्थ आए भक्तों की कतार मे खड़ा कोई भक्त मुझे ठाकुर-सा लगता। यहीं मंदिर के चबूतरे पर ठाकुर बात किया करते थे। इसी रंगशाला में ठाकुर बैठा करते थे। चक्षु माँ काली को देखते-देखते जाने कब ठाकुर में डूबकर बन्द हो गए। मै खंभे से टेक लगाकर बैठकर ठाकुर में खो गया।

होश आया जब किसी ने झकझोर कर जगाया और कहा, 'जाओ! नहीं तो ठाकुर का कमरा बन्द हो जाएगा।' मै उठा और तेजी से झपटकर आंगन पार कर कोने में बने ठाकुर के कमरे में पहुॅच गया। दीवार से टेक लगाकर बैठ गया। सामने ठाकुर का पलंग, मच्छरदानी और खड़ाऊं रखे थे। ऊपर ठाकुर का भव्य जागृत चित्र.... आंखों से आंखें टकराई और मैं फिर ठाकुर में डूब गया। जाने किसने फिर जगाया और कहा कहा– 'निकलो! अब कमरा बन्द होगा।' आंख खुल ही नहीं रही थी फिर भी निकलना था इसलिए निकला और बाहर एक विशालकाय वृक्ष तले फिर ध्यान में डूब गया।

अबकी खेलते बच्चों की चीख-पुकार से मेरा ध्यान टूटा। छककर पीने के बाद तृप्ति बोध से आनन्द का नशा हल्का हो गया था। उठकर स्टेशन की ओर चल दिया। रास्ते में किसी ने खाने के लिए बुलाया तो मैंने होटल में बैठकर खा लिया। (वहाँ होटल वाले यात्रियों को खाने के लिए आवाज़ देकर बुलाते हैं) रेलवे स्टेशन आया। टिकट खरीदकर ट्रेन में जा बैठा। जब घर पहुँचा तो मामी ने प्रश्न पर प्रश्न किए–क्या देखा? महादेव का मंदिर देखा? गंगाघाट देखा? ग्यारह रुद्र देखे? माँ काली को पूजा चढ़ाया?

हर प्रश्न का उत्तर नहीं में सुनकर वह चीखीं कि क्या करता रहा इतनी देर तक? पूरा दिन गंवाकर शाम को लड़का लौट रहा है और कुछ देखा भी नहीं? मैं चुप रहा– 'क्या बताता कि क्या हुआ?' आज इसे पढ़कर वो जान सकेंगी कि उस दिन क्या हुआ था और लोग जानेंगे कि बार-बार मेरे कलकत्ता जाने का प्रयोजन क्या था?

■ ■ ■

नरमुण्ड हँसता रहा

कुछ समय पहले दि० ७ अप्रैल से १३ अप्रैल, १९९९ को 'गंगा यमुना में अपनी 'तांत्रिक की डायरी' में मैंने प्रयाग विश्वविद्यालय की मेधावी छात्र इन्दु श्रीवास्तव की असामयिक मृत्यु पर क्षोभ प्रगट करते हुए लिखा था कि आगे भी दो युवकों की मौत निश्चित है। बहुत से लोग मेरे पास उन युवकों का नाम जानने आए। १०-१२ युवकों की उस मित्र मंडली में दहशत पैदा कर दी है। उनमें से एक विजयेन्द्र प्रताप सिह ने ११ अगस्त को आत्महत्या कर ली। मुझे उसकी आर्त्तवाणी नहीं भूलती,– 'भाई साहब! इन्दु की मौत ने मुझे हिला दिया है। यहॉ से भागकर कानपुर गया मगर इन्दु को भुला न पाया। इन्दु की आत्मा मेरा पीछा नही छोड़ रही। इधर इन्दु... उधर इन्दु... हर तरफ इन्दु का अहसास मेरे आत्मबल को क्षीण करता जा रहा है। मैने गाँजे के नशे में डूबकर भी देखा मगर मुझे राहत न मिली। मैंने उसे पत्नी सहित आश्रम आने का परामर्श दिया था मगर प्रभावी शक्तियाँ अपने शिकार को यूँ ही नहीं छोड़तीं... अन्ततः बेचारा विजयेन्द्र काल कवलित हो गया। अपने पीछे नवविवाहिता पत्नी को विधवा बना गया।

इस संदर्भ को उद्धृत करने का तात्पर्य स्वयं की प्रशंसा या स्वयं के सही भविष्य द्रष्टा होने का दंभ नहीं है। मैं तो रसूलाबाद श्मशान घाट में अपनी साधना हेतु आने वाले उत्साही साहसी युवाओं को श्माशानी खतरे से अवगत कराना चाहता हूँ। मेरा विनम्र निवेदन है कि उचित और सक्षम मार्ग दर्शन के बगैर श्मशानी शक्तियों से खिलवाड़ करना मौत को दावत देने के समान है। एक बार यदि आप जाने अनजाने श्मशानी शक्ति से उलझ गए तो बच पाना लगभग असंभव ही है। मैं तंत्र की साधना का विरोधी नहीं हूँ। तंत्र... श्मशान और श्मशानी साधनाएं किसी भी पौरुषेय व्यक्तित्व के लिए चुनौती

हैं। मगर इसके लिए दृढ़ संकल्पशक्ति, अदम्य साहस, और असाधारण एकाग्रता चाहिए। यदि आवश्यक अर्हतायें न हों तो आप किसी भी परीक्षा में सम्मिलित ही न हों पायेंगे सफलता असफलता की बात तो और है।

आज लोग चमत्कारिक उपलब्धियों की लालसा में इस क्षेत्र में कूदते हैं। इन्हें तांत्रिक शक्तियों की चकाचौंध आकर्षित करती है। वे भौतिक समृद्धि और जागतिक कामनाओं की पूर्ति हेतु इस क्षेत्र में प्रवेश चाहते हैं। कुछ तो तंत्र को व्यवसाय समझने लगे हैं। तंत्र को सर्वोत्कृष्ट कैरियर समझकर इसमें घुसना चाहते हैं। यहीं इलाहाबाद में विद्युत विभाग के एक अधिशासी अभियन्ता एक दिन सपरिवार मेरे घर आए थे। हम लोग सामने कमरे में बैठे थे। पत्नियाँ एक दूसरे से अपने-अपने पति का गिला-शिकवा कर रही थीं। मेरी पत्नी उनकी पत्नी से मेरी अकर्मण्यता की शिकायत करते हुए बोली, 'ये हर समय पूजा-पाठ की धुन में रहते हैं... दुनिया में कोई कारोबार नहीं करते....।

अभियन्ता महोदय धीरे से बोले, 'भाई साहब! स्वयं नहीं करते.... लोगों से करवाते हैं।' मेरी पत्नी उनकी बातें न सुन आगे बोल रही थी 'हैं ये बहुत टैलेन्टेड... कोई भी बिज़नेस करें... सफलता निश्चित है।' अभियन्ता महोदय धीरे से बोले, 'बड़े-बड़े बिज़नेस मैन आगे पीछे दौड़ते हैं भाई साहब! आपका क्या कहना है... बड़ा से बड़ा अधिकारी....। नेता.... अभिनेता.... व्यवसायी सब तांत्रिक के समक्ष दंडवत करते हैं।' उनकी बातों से स्पष्ट था कि तंत्र सर्वोत्कृष्ट कैरियर समझा जा रहा है। आज के कहे जाने वाले तांत्रिक भी अपनी दुकान कुछ इसी ढंग से चला रहे हैं कि तंत्र व्यवसाय सा प्रतीत होता है। इसी व्यावसायिक-तंत्र के लोभ में युवावर्ग श्मशान आता है। छिछली, सतही और कमजोर मानसिकता को श्मशान स्वीकार नहीं करता। ऐसे युवक या तो एक आध बार आकर स्वयं आना बन्द कर देते हैं या फिर विक्षिप्त/अर्धविक्षिप्त हो जाते हैं या फिर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। मैं स्पष्ट और पूरी दृढ़ता से कह रहा हूँ कि तंत्र में ऐसे लोगों की कोई जगह नहीं है। तंत्र का बीज शक्तिवान मन पर डाला जाता है। साहस और उत्साह से परिपूर्ण

हृदय उसे अंकुरित करता है। साधना की एकाग्रता से पौध उगती है और परहित में प्रयोग किये जाने पर बढ़ती है। तंत्र अहँ से ब्रह्म की यात्रा है। कुटिलता, चालाकी, लोलुपता, कामुकता आदि का इसमें कोई स्थान नहीं है। ऐसे व्यक्ति कोई भी तांत्रिक शक्ति सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकते.... यदि प्राप्त हुए लगते हैं तो वे ढोंगी हैं..... पाखंडी हैं। तंत्र में छिछलापन... हल्कापन नहीं है। तंत्र में डकैत हो सकता है.... कत्ली हो सकता है मगर लुच्चा लफंगा नहीं....।

कहने का आशय मात्र यही है कि तांत्रिक के ग्लैमर से खिंच कर तंत्र में प्रवेश करने की चेष्टा उचित नहीं है। धन कमाना है तो धन के लिए भौतिक जगत में उद्यम करो... यश कमाना है तो सांसारिक मानदंडों के अनुरूप चलकर ख्याति अर्जित करो। तंत्र सूक्ष्म जगत का विज्ञान है। स्थूल जगत की कामनाओं की पूर्ति हेतु तंत्र में प्रवेश का विचार सर्वथा, अनुचित है। तंत्र की शक्तियों से भौतिक जगत की कामनाओं की पूर्ति ठीक वैसी है जैसे चिड़िया मारने के लिए तोप चलाई जाए।

हाल की ही बात है। एक बार रात्रि ६ बजे शिव-मन्दिर में पूजन करके जब मैं वापस आने के लिए मुड़ा तो एक लड़के ने अभिवादन किया। मेरे पूछने पर उसने बताया कि मुझसे मिलने के लिए वो दो-तीन दिन से भटक रहा था। मैं उसे लेकर पास की पत्थर की बेन्च की ओर बढ़ा बैठते हुए मैंने उससे पूछा, 'क्या नाम है तुम्हारा'

'कमलाकान्त.....।' उसने बताया।

'क्या करते हो?' मैंने पूछा?

'इ० विश्वविद्यालय में बी०ए० कर रहा हूं।' उसने विनीत भाव से उत्तर दिया।

अब मैंने उसे गौर से देखा, १७-१८ वर्ष का दुबला-पतला वह लड़का अभी किशोरावस्था छोड़ नहीं पाया था। उसकी आँखों से झांकती सरलता, निश्छलता उसके सात्विक होने का संकेत दे रही थी। क्षण भर को लगा जैसे वह मेरा अपना लड़का ही हो। मेरा हृदय स्नेह और पितृत्व से भर उठा।

'क्या चाहते हो?' मैंने आत्मीय मुस्कान के साथ प्रश्न किया।

उस लड़के ने झिझकते हुए कहा, ''मैं भूत-प्रेत देखना चाहता हूँ। मुझे गहन जिज्ञासा है कि इनका अस्तित्व है भी या नहीं? कई बार रात में श्मशान में भी घूमता रहा... मगर मुझे कभी कोई मृतात्मा नहीं दिखी।'

'तुम्हें मेरा नाम किसने बताया?' मैंने जिज्ञासा की।

उसने बताया कि हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद में कोई गोष्ठी थी। वहीं पर चर्चा हुई तो रतिनाथ योगेश्वर (कवि और कलाकार) ने मेरा जिक्र किया। कमलाकान्त ने जिज्ञासा की तो रतिनाथ ने मेरा पता और मिलने का स्थान बता दिया। मैं कुछ सोच रहा था। कमलाकान्त ने पुनः अनुरोध किया, 'मेरी भूत-प्रेत से मिलने की बहुत इच्छा है।'

उसकी बातों से.... उसके व्यवहार से... उसके आचरण से.... एक कोमल स्नेहिल भाव मेरे मन में उठ रहा था। मैंने मुस्कराते हुए कहा, 'रबर के दस्ताने पहनकर यदि बिजली का तार छुओगे तो क्या करेन्ट असर करेगा?'

'नहीं।' वह अविलम्ब बोला।

'फिर मृतात्मा तुमसे कैसे टकराएगी?' मैने मुस्कुराते हुए कहा।

मेरी बात वह समझ न सका, उलझ कर बोला, 'मैं आप का मतलब नहीं समझा?' 'गायत्री मंत्र कितनी माला प्रतिदिन जपते हो।' मैंने प्रश्न किया 'दस माला प्रतिदिन' (यदि मुझे ठीक याद है तो) उसने तुरन्त उत्तर दिया।

'तुम माँ गायत्री के कवच में सुरक्षित हो। कोई मृतात्मा तुम्हारे इर्द-गिर्द आ ही नहीं सकती। मैंने तथ्यों को स्पष्ट करते हुए कहा, 'माँ गायत्री के तेज के समझ कोई मृतात्मा आ ही नहीं सकती। तुम जहाँ-जहाँ जाओगे यदि मृतात्मायें होंगी भी.... तो तुम्हारा मार्ग छोड़कर दूर हट जाएंगी।'

'मगर मेरी बहुत इच्छा है भूत-प्रेत देखने की' कमलाकान्त ने पुनः अपनी आतुरता दर्शायी।

'भूत-प्रेत दर्शनीय वस्तु नहीं हैं।' मैंने उसे समझाते हुए कहा 'पंच तत्वों'

का शरीर दिखता है। उनके पास वायवीय शरीर है जिसमें पृथ्वी तत्व नहीं होता। उनका शरीर मात्र ४ तत्वों का होता है। अतः वे दिखाई नहीं देते। जब वे चाहें तभी उन्हें साधारण मनुष्य देख सकता है। जब मनुष्य उनका आवाहन करता है.... वे आते हैं। वे भोग योनि में हैं। उनकी स्वतंत्र इच्छा शक्ति नहीं है। अतः वे स्वयं पहल कर ही नहीं सकते। जाने अनजाने हमारी छेड़ छाड़ से प्रभावित होकर यदि वे अपना रूप दिखाते हैं तो देखने वाले पर काबू भी पा लेते हैं। उनके दिखने का अर्थ ही है– एक प्रकार का संबंध बन जाना। अब ये अपनी शक्ति सामर्थ्य की बात है कि कौन किस पर प्रभावी होता है। तुम ना समझ बच्चे हो.... पूरा जीवन पड़ा है.... पढ़ो लिखो.... अच्छी नौकरी में जाओ... भूत-प्रेत के पचड़े में मत उलझो।' मैंने उसे प्यार से समझाया। वह चुप तो हो गया मगर संतुष्ट नहीं था। मेरे पास अधिक समय नहीं था। इसलिए उठकर चल दिया। उसे भी उठना पड़ा।

दो-तीन दिन बाद रास्ते में रतिनाथ मुझसे मिला। उसने पूछा, 'भाई साहब! मैंने एक लड़के को आपका नाम और पता बताया था, वह लड़का आपसे मिला तो नहीं था?' मेरे हाँ कहने पर उसने आगे बताया, 'वह लड़का बहुत अच्छा हाँथ देखना जानता है। उनका (किसी परिचित का) हाँथ देखकर ऐसा बताने लगा जैसे लिखा हुआ पढ़ रहा हो।' आश्चर्य व्यक्त करते हुए रतिनाथ ने बताया। मेरे मानस पटल पर उस सीधे सरल किशोर की छवि उभर आई। माँ गायत्री की इतनी अधिक उपासना करने वाले ब्राह्मण्ड पुत्र के लिए भविष्य-बाँच देना साधारण सी बात है। वो बगैर हाँथ देखे भी बहुत कुछ बता सकता है। मन ही मन में उसके बारे में सोचने लगा। प्रगट में आश्चर्य व्यक्त करता हुआ मैं बोला, 'अच्छा। उस लड़के ने यह तो नहीं बताया.... वह तो मुझसे भूत-प्रेत से साक्षात्कार की इच्छा व्यक्त कर रहा था।' बात समाप्त कर मैं अपने मार्ग पर चल पड़ा। मन कमलाकान्त में ही अटक गया था। गायत्री-साधना के पथ पर चलते हुए मृतात्मा से साक्षात्कार की इच्छा....! एक जबर्दस्त विरोधाभास था। मां गायत्री की सात्विक साधना में इस तामसी इच्छा से कोई सामंजस्य न था। पूर्वजन्म के कर्म वर्तमान

आध्यात्मिक प्रगति में बाधक हो रहे थे। पितृहीन बालक यदि भटक गया तो कौन उसे संभालेगा? मेरा मन करुणा से भीग रहा था। 'तुम उसकी जिज्ञासा का शमन कर सकते थे.... मगर तुमने उसकी बातों को गंभीरता से नहीं लिया।' मन ने स्वयं को लताड़ा, 'यदि वह गड़बड़ाया तो.....?' मेरा मन आशंका से हिल गया। एक भाव उठा, 'हे शिव। उसे फिर मुझसे मिला दो.... मैं उसकी इच्छा पूरी कर दूँगा.... उसे भटकने से बचा लूँगा।'

कब कौन सी पुकार शिव सुन लेंगे... कुछ निश्चित नहीं है। कभी सैकड़ों वर्षों से तपस्या करने वाले की ओर मुँह उठा कर नहीं देखेंगे... कभी एक बार के जल अर्पण से प्रसन्न हो दर्शन दे देते हैं। कभी यूँ ही कुछ हुआ क्रियान्वित कर देंगे। कभी बहुत चाहा हुआ नहीं करेंगे.... शिव की लीला न्यारी है.... इसे पूर्णतः समझ पाना बहुत मुश्किल है। शास्त्रों में इसे माया कहा गया है। भक्तों ने प्रभु की लीला कहा है। तात्पर्य एक ही है जिस कर्म फल का विस्तार और गहराई बुद्धि से न समझी जा सके... उसे प्रभु लीला समझ कर मन को समझा लीजिए।

शिव की इच्छा! एक दिन कमलाकान्त मार्ग में मिल गया। स्कूटर रोककर मैं उससे मिला। वह भी बहतु प्रेम से मिला। थोड़ी औपचारिक बातों के बाद मैंने उसे, अपने पूजन-स्थल पर बुलाया। उसने सायंकाल ७ बजे आने का वादा किया।

निर्धारित तिथि पर सायंकाल ७ बजे कमलाकान्त आ गया। काफी लोग थे। उसे भी बैठना पड़ा। काफी देर तक मैं अन्य लोगों को निपटाता रहा। जब सब लोग चले गए एकान्त हो गया.... मैंने उसकी आँखों में देखा। वह कुछ असहज लग रहा था। स्वाभाविक भी था। गंगा का किनारा.... रात का अंधेरा.... निर्जन सन्नाटा और तंत्र शक्तियों की उपस्थिति बड़े-बड़े साहसी लोगों को असामान्य कर देती है। मुझे याद आया यश मालवीय (कवि और साहित्यकार) के साथ एक प्रसंग। एक बार यश मालवीय एक दबंग और क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट नेता के साथ आए थे। नेता के साथ उनके एक मित्र-नेता भी थे। उन लोगों के नाम मैं नहीं लिखूँगा वरना उनकी

किरकिरी होगी। रात्रि ८ या ८.३० का समय होगा। काल भैरव का प्रसाद चल रहा था। थोड़ी देर बाद उन्हें विचित्र अनुभूतियां होने लगी। वे कसमसाने लगे। उनका आत्मविश्वास डगमगाने लगा। रह रहकर पहलू बदलने पर मैंने पूछा, 'क्या हुआ?'

वे असमंजस से बोले, 'बार बार लगता है कि नीचे कुछ रेंग रहा है।' यश हँसने लगा। चुहल करते हुए बोला, 'नीचे सांप है मगर डरिये नहीं'... 'डरूँगा नहीं।' वे चादर उठाने को उद्यत हुए। अब मैं घबराया। चादर के नीचे दरी और दरी के नीचे पैरा था। पैरा में उन दिनों बमनी (सांप की प्रजाति) और गोजर थे। वे किसी को हानि नही पहुँचाते थे। प्रतिदिन लोग उस पर बैठते थे। मगर बिस्तर पलटने पर उन्हें देखने पर लोग भयभीत हो जायेंगे.... फिर नहीं बैठेंगे। अतः मैंने उन्हें जबर्दस्ती रोकते हुए कहा 'आप लोग निश्चिन्त बैठिये। आप को कोई भी चीज़ नुकसान नहीं पहुँचायेगी। मगर कम्युनिस्ट भाइयों के मुख का उड़ा हुआ रंग वापस नहीं आया। इतने में खिड़की पर कुछ आहट हुई...। वे चौंककर उधर देखने लगे..... एक चूहा पीछे कूदा, वे उछलकर खड़े होने लगे।..... फिर पाइप से अचानक सूं सूं की आवाज़ आयी। कहने का अर्थ, एक पर एक असामान्य और अज़ीबोगरीब घटनाओं ने उनकी मनःस्थिति को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया था। यश को बहुत मज़ा आ रहा था। रह रहकर ठहाका लगा रहा था। उस समय मैंने एक कम्युनिस्ट से प्रश्न उछाला, 'आपको यदि यहाँ अकेला छोड़ दिया जाय तो क्या आप थोड़ी देर रह लेंगे?

उन्होंने भय की उत्तेजना में अपने उद्‌गार व्यक्त किये, 'सबके साथ रहते हुए तो हालात खराब है.... अकेले तो.....।' यश ने ज़ोरदार ठहाका लगाया और फिर मुस्कराते हुए उनसे पूछा, 'आप कम्युनिस्ट लोग ईश्वर और ऊपरी शक्तियों के अस्तित्व को नहीं मानते हैं न!' उन्होंने हथियार डालते हुए कहा, 'बड़े बड़े कम्युनिस्ट नेता को भी यदि यहां ले आया जाय तो ईश्वर और इन सब शक्तियों का अस्तित्व मान लेंगे।' यश पुनः हँसते हुए बोला 'आपकी यह बात हम कल सब से कहेंगे!' उन्होंने खुलकर हृदय के भाव व्यक्त कर

दिये, 'कल तुम चाहे जिससे कहो.... हमें तो घबराहट हो रही है कि आज हम घर तक जिन्दा सही-सलामत पहुँच पायेंगे या नहीं।'

उनकी मनः स्थिति देखकर मुझे भी हँसी आ रही थी मगर शिष्टाचारवश हँसी रोके था। फिर भी उनकी बात पर मुस्कराहट आ ही गयी। उन्हें आश्वस्त करते हुए मैंने कहा, 'आप निश्चिन्त रहिये। यहां से अपने घर तक आप सुरक्षित पहुंच जायेंगे।'

इसलिए कमलाकान्त का, असहज होना स्वाभाविक ही था। मुझे उसकी सामान्य मनः स्थिति चाहिये थी। उसे सामान्य करने के लिये मैंने वार्ता प्रारम्भ की, 'सुना है तुम हाथ बहुत अच्छा देखते हो?' मैंने मुस्कराते हुए पूछा। कमलाकान्त ने झिझकते हुए हामी भरी।

'मां गायत्री की कृपा है तुम पर..... लो मेरा हाँथ देखकर मुझे भी कुछ बताओ?' हाथ उसके आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा, कमलाकान्त को और भी संकोच होने लगा। मगर मैंने उत्साहवर्धन करते हुए.... उसकी प्रशंसा करते हुए उसे हाँथ देखने को विवश किया। उसने हाँथ देखते हुए बताना प्रारम्भ किया। थोड़ी ही देर में वह पूरे आत्मविश्वास से भर उठा। गौर से मेरी उँगलियों पर बने चक्रों को देखने लगा, फिर विस्मय से बोला, 'भाई साहब! आपके दाहिने हाँथ की तर्जनी के नीचे दक्षिणावर्ती शंख बना है। यह विष्णु भगवान की कृपा का विशेष लक्षण है। प्रातः आँख खुलने पर सबसे पहले इस शंख को देखने पर मनोकामना पूर्ण होना निश्चित है।

यह तथ्य मेरे लिये भी नया था ईश्वर की कृपा को समझने का यह मानदंड मेरे लिये भी अछूता था। किसी भी घटना को समझने के ढंग भिन्न-भिन्न होते हैं। हस्त रेखाविज्ञ अपने ढंग से देखता है... अंक ज्योतिष अपने ढंग से परखता है.... फलित ज्योतिष अपने हिसाब से निरखता है...... तांत्रिक अपने ढंग से समझता है..... योगी, अपनी दृष्टि से देखता है.....। प्रभु की कृपा अनमोल घटना है जो हर कसौटी पर खरी उतरेगी। मार्ग चाहे जो हो..... अभीष्ट प्रभु की कृपा ही है..... मिल गयी तो हर मार्ग ठीक..... और यदि नहीं मिली तो हर मार्ग व्यर्थ।

किसी शायर का शेर याद आ रहा हैः तू न चाहे तो तुझसे मिलके भी नाकाम रहे। तू जो चाहे तो गमे-हिज्र भी आसान रहे।'

थोड़ी देर की बातचीत में कमलाकान्त सामान्य हो गया। मैं उसे ध्यान कक्ष में ले गया। उससे आँख बन्द कर ध्यान करने को कहा। अपनी इष्ट माँ के स्वरूप पर ध्यान स्थिर रखने का आदेश दिया। मैंने शिव से प्रार्थना की– 'अपने गणों को आदेश दे बालक की जिज्ञासा शान्त करो'

रात का अंधेरा.... गंगा का किनारा...... तांत्रिक का साधना स्थल.... काल भैरव की उपस्थिति.... से सारे तथ्य किसी भी व्यक्ति का दिल-दहलाने के लिये पर्याप्त थे। मगर माँ गायत्री का कृपा-पात्र बालक भयभीत न था। ध्यान का समय समाप्त होने के पश्चात् उसने अपना अनुभव बताया। मुख्य बात यही थी कि उसे श्मशानी शक्ति का अनुभव हो गया था। उसने बताया कि 'आँख बन्द कर ध्यान प्रारंभ करते ही एक नरमुंड आ गया। वो मुझे घूर रहा था। दृष्टि से दृष्टि मिलते ही नरमुंड हँसने लगा। मेरा शरीर थरथराने लगा..... कंपकंपी होने लगी। एक क्षण को लगा दहशत तारी हो रही है.... हृदय की धड़कन थम गयी है। मैंने स्वयं को संभाला। माँ का स्मरण करके पद्मासन जमाया। रीढ़ को सीधा किया। शरीर सामान्य हो गया। ऊर्जा का सघन प्रवाह रीढ़ की हड्डी में प्रवाहित होते हुये चेतना को प्रभावित करता रहा। नरमुंड हँसता रहा..... मेरी आँखों के सामने..... मुझे घूरते हुये ठहाका लगाता रहा। थोड़ी देर में जाने कहाँ से एक नरमुंड और आ गया। वे दोनों नरमुंड हँसते हुये मेरे इर्द-गिर्द नाचते रहे।'

'भय तो नहीं लगा?' मैंने उसकी आँखों में झांकते हुये प्रश्न किया।

'नहीं तो....।' उनसे तत्काल उत्तर दिया 'ये स्थल तुम्हें कैसा लगा?' मैंने सामान्य प्रश्न किया।

'इस स्थल पर सामान्य व्यक्ति थोड़ी देर भी न बैठ सकेगा' कमलाकान्त सोत्साह बताने लगा 'ऊर्जा का प्रबल प्रवाह संभाल पाना बहुत मुश्किल है। सामान्य व्यक्ति विक्षिप्त। अर्द्धविक्षिप्त या वेहोश हो जायेगा।'

मैंने अनजान बनते हुये उससे प्रश्न किया, 'मैं तो शिव का उपासक हूँ। शिव के पूजन स्थल पर नरमुंड कहाँ से आ गया?'

कमलाकान्त जोश में बोलने लगा, 'श्मशान में खोपड़ी का आ जाना स्वाभाविक है। इसमें विचित्रता क्या है? ये खोपडी वैसी ही थी जैसी औघड़ के पास होती है।'

मैंने पुनः प्रश्न किया, 'खोपड़ी से तुम्हारी क्या बात हुयी?' क्या उसने तुमसे कुछ कहा?'

'कहा तो कुछ नहीं' वह सामान्य स्वर में बोला, 'बस! मुझे देखकर हँसती रही।'

रात अधिक हो जाने के कारण मैं उसे अपने घर ले गया। पत्नी को बताया। वालक संकोच कर रहा था मगर पत्नी ने आग्रहपूर्वक उसे भोजन कराया फिर उसे विदा कर दिया।

■ ■ ■

मैं जिन्न हूँ

हिन्दू धर्म में स्त्रियों का श्मशान जाना वर्जित है। लगभग सभी धर्मों में स्त्रियों का कब्रिस्तान जाना वर्जित है। स्त्रियों का अकेले निकलना, रात को देर तक घर से बाहर रहना आदि वर्जित है।

स्त्रियों के समानाधिकार के आन्दोलन का अर्थ यह नहीं है कि जो काम पुरुष करे... वही स्त्री करे और जो काम स्त्री का है उसे पुरुष करे। रसोई में बराबर की साझेदारी या बाहर बराबर की भागीदारी की बात करना समानाधिकार शब्द के अर्थ का अनर्थ करना है। स्त्री जननी है पुरुष बच्चे नहीं पैदा कर सकता। बाप की अर्थी को पुत्र कन्धा देता है पुत्री नहीं दे सकती। समानाधिकार का अर्थ घर गृहस्थी चलाने में दोनों की बराबर की भागीदारी है। दोनों का रोल समान रूप से महत्वपूर्ण है। दोनों को एक दूसरे का समान रूप से सम्मान करना चाहिए। स्त्री की रसोई उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना पुरुष का कार्यालय। घर को मितव्ययिता से चलाना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना घर के लिये धन का कमा कर लाना। घर-संसार चलाने के लिए स्त्री-पुरुष अपनी क्षमता, योग्यता और सुविधा के अनुसार कार्य का विभाजन कर.... एक दूसरे के प्रति सद्भाव रखते हुए अपने अपने कार्य को सुचारु रूप से करें।

स्त्री स्वाभावतः संवेदनशील, कोमल और भावना प्रधान होती है। उसमे चंचलता, लज्जा, नम्रता, और संकोच होता है। मानसिक दृढ़ता और संकल्प शक्ति क्षीण होने के कारण उसे प्रभावित करना आसान होता है। सहज स्वाभाविक आज्ञाकारिता के कारण स्त्री शोषित होती है। स्त्री शरीर ही कोमल नहीं होता स्त्री-मन भी कोमल होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री पुरुष में शारीरिक भिन्नता ही नहीं है बल्कि मानसिक सांवेगिक और सूक्ष्म

स्तर पर भी दोनों भिन्न हैं। इसलिए मृतात्मायें स्त्री को अधिक प्रभावित करती हैं। लड़कियों में.... स्त्रियों में मृतात्माओं से प्रभावित होने की घटनायें पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक होती हैं।

जीवन में घटी विलक्षण घटनाओं में से एक आज लिख रहा हूँ। मेरे अन्तरंग कई लोगों को और श्री रवीन्द्र कालिया को भी इस घटना की प्रतीक्षा थी। मैं भी लिखना चाहता था मगर घटना के प्रमुख पात्र की इज़ाजत न होने के कारण विलम्ब हुआ।

कई वर्षों पहले की बात है। उन दिनों मेरा पूजा-केन्द्र बन रहा था। मैं निर्माण कार्य में व्यस्त था। उन दिनों श्री गोविन्द दूबे (श्री के.एस. दूबे, अध्यक्ष ब्रदरहुड महालेखाकार कार्यालय के सगे छोटे भाई) मेरे बहुत करीब थे। गोविन्द दूबे जूडो कराटे का भी शौक रखते हैं। स्वस्थ्य बलिष्ठ शरीर था। उन्होंने अपने किसी मित्र की बहन की बीमारी की चर्चा की। उनके मित्र बहुत परेशान थे। उन्हें ऊपरी बाधा (भूत-प्रेत) का शक था। मैं इन सब चक्करों में नहीं फंसना चाहता था। आदमियों के झगड़े सुलझाना ही मुश्किल है फिर आदमियों और ऊपरी शक्तियों के उलझे ताल-मेल को सुलझाना अत्यन्त दुष्कर है। सब एक दूसरे को दबाना चाहते हैं। अपना पक्ष ठीक सिद्ध करने के लिए साम-दाम-दंड-भेद सब कुछ प्रयोग करते हैं। फिर मेरे मन में एक निष्कर्ष आ चुका था..... चाहे जितना करो.... किसी को कुछ भी कर देने से आदमियों के जीवन की समस्यायें समाप्त नहीं होंगी..... सिर्फ प्रकृति बदल जायेगी.... व्यक्ति सदैव ऐसे ही दुखी रहेगा जब तक वह स्वयं अपने मन को बदलने के लिये तैयार न हो.... जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलने को तैयार न हो... फिर अपना समय और शक्ति व्यर्थ गँवाने से क्या लाभ? सबको अपने वर्तमान से स्वयं लड़ने दो।

उन दिनों दूबे जी मेरे साथ नित्य बैठते थे। ए.जी. आफिस के चौराहे पर बोर्ड आफ रेवेन्यू आफिस के कार्नर पर पांडे जी की चाय की दुकान है। दिन में हम लोग वहीं बैठते थे। नित्य बैठने वाले साथी की बात कब

तक टालता.... एक दिन हॉ करनी ही पड़ी। उनके मित्र ने अपनी बहन के बारे में बताया। उनकी बहन उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय की बी०ए० क़ी छात्रा थी। पढ़ाई में ठीक थी। खाना-पीना रहना सब कुछ सामान्य लड़कियों जैसा ही था। उसमें शारीरिक बीमारी के कोई लक्षण न थे। उसे देखकर हर कोई सामान्य ही समझता था। कभी-कभी हीं वह असामान्य आचरण करती थी। कभी रात में घर से बाहर निकल कर चल देती फिर उसे वापस लाने में मुश्किल होती। कभी किसी बात पर यदि वह क्रोधित हो जाती तो उसकी भयंकर मुद्रा देखकर घर वाले भयभीत हो जाते। ऐसी स्थिति में उसके अन्दर बहुत शक्ति भी आ जाती थी। उसे पकड़ पाना या उसे रोक पाना असंभव हो जाता। किसी बात पर यदि वह जिद ठान बैठती तो फिर अपने मन की कर के ही मानती थी। मां बाप, भाई बहन किसी की कुछ नहीं सुनती। झगड़े झंझट में वह मर्यादा का अतिक्रमण भी कर जाती। क्रोध आने पर फिर किसी रिश्ते का लिहाज़ नहीं करती थी। घर के लोग भरसक प्रयास करते कि कोई ऐसी घटना न हो जिससे वह सन्तुलन खो बैठे मगर वह लड़की ऐसे अवसर निकाल ही लेती थी। हंगामा खड़ा हो जाता। घर की बदनामी होती। मोहल्ला तमाशा देखता।

वृतान्त से स्पष्ट था कि लड़की पर किसी मृतात्मा का कब्जा है। कोई शक्ति उस पर आती जाती रहती है। जब लड़की स्वयं रहती है तो सामान्य रहती है। जब मृतात्मा उस पर आ जाती है तो उसका आचरण असामान्य हो जाता है। लड़की और मृतात्मा का संबंध पुराना है। लड़की की आत्मा पूर्णतया समर्पण कर चुकी है.... विरोध नहीं करती। मृतात्मा के आने-जाने की प्रक्रिया इतने बार घट चुकी है और इतनी सहज हो गयी है कि कुछ पता ही नहीं चलता। यह दीर्घ अवधि से पूर्ण कब्जे का मामला था। मैं समझ तो सब रहा था मगर हस्तक्षेप करने की इच्छा न थी। अतः उसे टाल देया यह कहकर कि फिर आना किसी दिन चल के देखेंगे।

मगर फिर दूबे जी पीछे ही पड़ गए। अन्ततः मुझे समय देना ही पड़ा। एक दिन १२ बजे का समय दिया। दूबे जी ११ बजे से ही मेरे पास बैठे

थे। १२ बज गए मगर उनके मित्र नहीं आए। मुझे मौका मिला। उलाहना देना शुरू किया.... '१२ बज गए दूबे जी आपके दोस्त कहाँ हैं? लोग जिन समस्याओं का मुझसे त्वरित समाधान चाहते हैं स्वयं उन समस्याओं के प्रति उतने गंभीर नही होते।' दूबे जी चुप रहे। मुझे भी लगा चलो जान छूटी..... मगर १२.१५ पर वो आ गए। संयोगवश उसी समय एक अन्य परिचित भी आ गए थे। उनसे मेरी अन्तरंग वार्ता चल रही थी। अतः मैंने दूबे जी के मित्र को १ बजे आने को कहा। दूबे जी के मित्र चले गये और १ बजकर १५ मिनट तक नहीं आए। मुझे उठने का बहाना मिल गया। मैं यह कहते हुए उठ गया– 'वक्त की भी कोई कीमत होती है दूबे जी..... एक का सवा एक हो गए..... अब मैं नहीं रुक सकता।' हमारे साथ-साथ दूबे जी भी उठ खड़े हुए। हम लोगों ने अपना-अपना स्कूटर स्टार्ट कर दिया। चलने को उद्यत था कि इसी समय दूबे जी ने मुझे रोका और दिखाया। एक ओर से उनके मित्र आ रहे थे।

अब मित्र के साथ उसके घर चलना ही था। हम सब लोग चल दिए। उनके घर पहुँचे। हम लोगों को जिस कमरे में बैठाया गया उसमें कुछ कुर्सियाँ, मेज और तख्त रखा था। हम और दूबे जी अगल-बगल की कुर्सियों पर बैठ गए। मित्र अपनी बहन को बुलाने अन्दर चले गए। उनकी माँ आयीं और घर के अन्य सदस्य भी एक-एक कर कमरे में आने लगे, वे सब जमीन पर बैठ गए। मैंने उन्हें तख्त पर बैठने को कहा तो वे तैयार नहीं हुए। उनकी माँ बोली कि लड़की बिगड़ जाती है। कहती है कि– 'हमारे बराबर बैठने की हिम्मत कैसे हुई?' इसलिए उसके सामने हम लोग ज़मीन पर ही बैठते हैं। इसी समय एक लड़की आँगन से गुजरती हुई दिखी। मुझे लगा – शायद यह वह लड़की है। पूछने पर उसकी माँ ने सहमति सूचक सिर हिलाया। 'फिर यहाँ क्यों नहीं आयी?' मेरे पूछने पर माँ ने कहा 'आपके आने की सूचना उसे दे दी गयी है.... अब आना या न आना उसकी इच्छा पर है।'

मैंने कहा, 'आप उससे जा कर कहें कि मैं बुला रहा हूँ।'

वे डरते-डरते गयीं और थोड़ी देर में वापस लौटीं। उन्होंने बताया कि आपका सन्देश दे दिया है। उसने थोड़ी झुंझलाहट के साथ कहा है कि– 'अभी आते हैं।'

थोड़ी ही देर में लड़की कमरे में घुसी। उसने अपनी माँ को क्रोधित दृष्टि से घूरा और फिर मेरे सामने आ खड़ी हुई। मैंने उसे सामने तख्त पर बैठने को कहा। वह बैठ गई। मैने वार्त्ता प्रारंभ की 'क्या नाम है तुम्हारा?' 'हमारा....!' उसने प्रति प्रश्न किया 'हॉ....हॉ तुम्हारा।' मैंने दृढ़ता से पूछा 'सुषमा', उसका उत्तर था। 'कहॉ पढ़ाई हो रही है?' 'हमारी.... पढ़ाई....' उसने पुनः अटकते हुए पूछा, 'हाँ.... हाँ तुम्हारी पढाई....' मैने पुनः कहा 'इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में।' उसने लड़खड़ाते स्वर में उत्तर दिया।

'किस क्लास में हो?' मैंने पूछा। 'बी.ए. थर्ड इयर में।' अबकी उसकी आवाज सामान्य थी। 'क्या-क्या विषय हैं तुम्हारे?' मैंने पूछा, वह फिर गड़बड़ा गई, 'हिन्दी..... इतिहास... और... और..और....' फिर अचानक खोखली हँसी हँसते हुए बोली, 'अरे दो ही विषय तो हैं थर्ड इयर में।' अब मैं गंभीर हो गया और उसकी आँखों में देखता हुआ बोला, 'तुम सुषमा नहीं हो।' मेरे इस प्रश्न पर एक क्षण तो लड़की विचलित हो गई मगर उसने स्वयं को संभाल लिया और दृढ़ता से प्रतिवाद किया, 'हम सुषमा हैं।'

उसके कहने का ढंग बता रहा था कि वह सुषमा नही है। अपना अस्तित्व छिपाने के इस बचकाने ढंग पर मुझे हॅसी आ गई। मैं हँसते हुए बोला, 'तुम सुषमा नहीं हो।' मेरी हँसी से वह चिढ़ गई और चिल्लाते हुए बोली, 'हम सुषमा ही हैं।' मैं पुनः शान्त, दृढ़ स्वर में मुस्कराते हुए बोला, 'क्यों झूठ बोलती हो.... तुम सुषमा नहीं हो।'

अब तो उसके क्रोध का पारावार न रहा। वह तमककर खडी हो गई। आग्नेय नेत्रों से ज्वाला बरसाती आक्रामक मुद्रा में मेरी ओर बढ़ी। वातावरण में भय व्याप्त हो गया। उसके हाव-भाव से परिचित लोग समझ रहे थे कि

वह हिस्त्र हो चुकी है और अब कुछ भी कर सकती है। दूबे जी भी मेरी सुरक्षा के लिए सतर्क हो गए थे।

मेरे पास आकर अपना सीना ठोंकते हुए वह गरजी, 'मैं कह रहा हूँ कि मैं सुषमा हूँ।'

उसके आक्रोश से तटस्थ हँसते हुए मैंने कहा, 'यार, झूठ भी ढंग से बोला जाता है..... 'मैं कह रहा हूँ कि मैं सुषमा हूँ...' तुम्ही बताओ क्या ये कहने का ढंग मानने वाला है।' मेरी बात सुनकर उसका क्रोध हवा में उड़ गया। मैंने आगे कहा, 'न जाने किस पाप-कर्मों के फलस्वरूप इस योनि में फंसे हो... और फिर पाप कर रहे हो.... मुझसे झूॅठ बोल रहे हो.....?'

अब सुषमा शान्त हो चुकी थी। मैंने उसे तख्त पर बैठने को कहा। वह बैठ गई। अबकी उसने पहल की, 'तुम क्यों आए हो?' मैंने बिना झिझक उत्तर दिया, 'तुमसे मिलने आया हूँ।' 'तुम झूठ कह रहे हो.... तुम मुझसे मिलने नहीं.... इन लोगों के बुलाने पर आए हो।' उसने अपने भाई की ओर इशारा करते हुए कहा। 'एक ही बात है।' मैं पुनः मुस्कराते हुए बोला, 'इनके कहने पर मैं तुमसे मिलने आया हूँ।' 'तुम मुझसे क्यों मिलना चाहते हो?' उसने झुंझला कर पूछा। 'तुम्हारे भले के लिए....।' मैं दृढ़ता से कह रहा था, 'आदमी मुझे समझे या न समझे.... मगर तुम तो समझते हो कि मैं प्राणि-मात्र का हित-चिन्तक हूँ। मैं तुम्हें आईना दिखाना चाहता हूँ। तुम जो कर रहे हो वह गलत है।'

'बहुत से लोग गलत कर रहे हैं।' उसने प्रतिवाद किया, 'तुम कहॉ तक.... किस किस को सुधारोगे।'

'जहाँ-जहाँ तक मेरी पहुँच और इच्छा होगी।' मैने स्पष्ट उत्तर दिया।' और अगर कोई न सुधरे तो क्या तुम जबर्दस्ती करोगे?' उसने आवेश सहित पूछा।

उसके प्रश्न में छिपे आशय को समझकर मुझे हँसी आ गई। मैंने बात को घुमाते हुए.... मुस्कराते हुए उत्तर दिया 'तुम स्वयं समझदार हो.... क्या

बेजा है... जानते हो.... मैं तो सिर्फ तुम्हारी मदहोशी तोड़कर जो तुम कर रहे हो वही तुम्हें दिखाने आया हूँ।'

'समझदारी से क्या होता है.... आँखें खोलने से भी क्या होता है।' उसने हथियार डालते हुए कहा, 'हर शख्स आदत का.... इच्छाओं का गुलाम होता है। जानता है कि गलत है नुकसानदेह है फिर भी तम्बाकू खा रहा है..... नशा कर रहा है। बहुत दिनों से इस शरीर पर कब्जा है, हमें भी आदत पड़ गई है इस शरीर की..... इस गुनाह की...।'

'कब्जा चाहे जितना पुराना हो.... अगर वह गैर-कानूनी है तो एक न एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा।' मैंने स्पष्ट किया। 'और अगर न छोड़ूँ तो?' उसने मेरी आँखों में देखते हुए पूछा।

'स्वयं नहीं छोड़ोगे तो लोग जूता मारकर निकाल बाहर करेंगे।' मैंने बेलौस असलियत व्यक्त कर दी।

'तुम ऐसा करोगे?' उसे पुनः क्रोध आ रहा था। 'बचकानी बातें मत करो।' मैंने उसे डाँटते हुए कहा, 'मार-काट मेरे स्वभाव में नहीं है। मैं तो ऐसा नहीं करूँगा मगर दूसरे लोग तुम्हें यूँ ही नहीं छोड़ देंगे.... फिर हर बात का समय होता है.... तुम तो स्वयं समझदार हो। समय सदैव तुम्हारा ही तो नहीं रहेगा। वक्त जब बदलेगा तो अदना सा आदमी तुम्हें लात मारकर बाहर कर देगा।'

वह सोच में डूब गई। गहरी सांस भरते हुए सुषमा बोली, 'आपने मुझे पशोपेश में डाल दिया। आज सुबह से ही मुझे आशंका थी कि आप आ सकते हैं। सुबह से ही मेरी नज़र आप पर थी। जब सवा एक बजे आपने घर जाने के लिए स्कूटर स्टार्ट कर दिया तब मैं निश्चिंत हो गया और आप पर से नज़र हटा ली। यहाँ अचानक आपको देखकर मैं चौंक गया। आपने मुझे धोखे से पकड़ लिया सुशील भाई!'

अब तो वहाँ बैठे लोग चौंक पड़े। दूबेजी तथा अन्य लोग जो मृतात्मा

के अस्तित्व को नहीं मानते.... उनके आश्चर्य का ठिकाना न था। एक तो 'सुशील भाई' का आत्मीय सम्बोधन दूसरे सवा एक बजे घर के लिए स्कूटर स्टार्ट करने की घटना बताना ये दोनों बातें किसी के भी अविश्वास को धराशायी कर देने के लिए पर्याप्त थीं। दूबेजी अवाक थे क्योंकि स्कूटर स्टार्ट कर घर जाने की बात हमारे और दूबेजी के अतिरिक्त अन्य किसी ने सुनी भी न थी।

'तुम गलत कह रहे हो।' मुझे उससे सहानुभूति होने लगी थी। 'तुम तो इस ढंग से कह रहे हो जैसे पुलिस चोर को पकडती है। मेरा ऐसा कोई मंतव्य नहीं है। तुम्हारी जो इच्छा हो तुम करो। तुम स्वतंत्र हो। मैं तो बस तुम्हें असलियत से आगाह कर रहा हूँ। अब तुम बाइज्जत जा सकते हो कल को बेइज्जत होकर जाओगे। जाना तो तुम्हें है ही..... ये तो हो नहीं सकता कि तुम इस गैर कुदरती कब्जे को.... इस शरीर को हमेशा के लिए अपना लो।'

'ठीक है, सुशील भाई।' गहरी सांस भरते हुए संजीदगी से वह बोला, 'आप ज्ञानी हैं आपका जो हुकुम होगा.... करूँगा।' फिर उसने घर के सदस्यों को सम्बोधित किया, 'देखते नहीं.....। सुशील भाई आये हैं इनके लिये कुछ नाश्ता लाओ।'

घर का एक सदस्य नाश्ता लाने चला गया। अब उसने नम्रता से मुझसे कहा, 'मैंने इन्सानों को हमेशा कुछ न कुछ दिया है.... आप बतायें कि मैं आप की सेवा में क्या पेश करूँ?'

उसकी बात पर मैं हँसने लगा। वह पुनः इसरार करते हुए बोला, 'मुझे जिनसे कुछ नहीं मिला.... उन्हें भी मैंने कुछ दिया है.... मैं वाकई आपको कुछ देना चाहता हूँ।'

मैंने उसकी बात टालते हुए कहा, 'अरे, मालिक (भगवान) का दिया हुआ ही फले फूले..... मन उसी में संतुष्ट रहे.... और किसी से क्या लेना-देना।'

मेरी इस बात पर वह खुश हो गया। लहक कर वहाँ बैठे लोगों को संबोधित करते हुए बोला, 'देखा.... एक ये हैं... और एक तुम लोग हो....।' फिर मुझे संबोधित करते हुए बोला, 'ये लोग हमेशा हमसे मांगते रहे और हम देते रहे। इस जगह झोपड़ी थी... अब पक्का मकान हो गया... ये परीक्षा में पास होना चाहता था मैंने पेपर में लिखे प्रश्न बताये...। ये लड़की हमेशा अच्छे नम्बरों से पास होती है.... जिस जिसने जो जो माँगा हमने दिया.... हम इस शरीर पर यूँ ही नहीं रहे सुशील भाई!' कहते कहते वह पुनः संजीदा हो गया। सभी लोग सहमे हुए मौन बैठे वार्तालाप सुन रहे थे। इसी समय मिठाई-नमकीन आ गयी। उसने मिठाई की प्लेट मेरी ओर बढ़ाई। मैंने रसगुल्ला उठा लिया फिर उसने .मिठाई खाई.... फिर सबको बाँटी गई। चाय-पानी का दौर समाप्त होने पर मैंने अन्तरंग वार्ता आरंभ की, 'कौन हो तुम?' 'मैं जिन्न हूँ' उसने स्वीकारोक्ति दी। 'कहॉ के हो?' मैंने पूछा उसने उत्तर दिया, 'कम्पनी बाग (इलाहाबाद) का हूँ।' (सेन्ट जोज़ेफ़ कालेज के सामने कम्पनी बाग का जो दरवाज़ा है उसमें घुसने पर दाहिने हाथ पर जो दरगाह बनी है)।

मैंने पूछा, 'इस लड़की पर कब आये?

उसका उत्तर था, 'लगभग ७ वर्ष हो गये।'

मैंने प्रश्न किया, 'इस लड़की को क्यों पकड़ा?'

जिन्न ने बताना शुरू किया, 'आज से ७ वर्ष पहले यह लड़की दरगाह के पास की सड़क से गुज़र रही थी। इसके बाल खुले थे। ९वीं कक्षा में पढ़ती थी। उस समय इसकी उम्र १४-१५ वर्ष की थी। गुलाबी कपड़ों में लिपटी यह लड़की जवानी में कदम रख रही थी मैं वहीं मज़ार पर बैठा इसे देख रहा था। सुशील भाई! कसम से बहुत जम रही थी...।'

'चूस तो ली। तुमने इसकी जवानी।' मैंने मुस्कराते हुए उसकी बात काटी जिस पर वह अपनी झेंप मिटाने के लिये झूठी हँसी हँसने लगा।

'फिर क्या हुआ?' मैंने बात जारी रखने के लिये आगे पूछा।

'फिर इसके साथ की लड़की ने इससे ठिठोली की। यह खिलखिला कर हँसने लगी। मेरा दिल उछलने लगा। इसकी हँसी मुझ पर बिजली गिरा रही थी। उसी समय इसके साथ की लड़की बोली– 'इतना मत हँस वरना मज़ार के बाबा नाराज़ हो जायेंगे।' प्रत्युत्तर में इस शोख लड़की ने इतराकर अल्हड़ता से मेरी अवमानना की– 'मैं तो नहीं मानती जिन्न बिन्न को... ये सब मन का भ्रम है।' और मजार की ओर देख कर जीभ निकाल कर चिढ़ाया। बस मुझे मौका मिल गया और मैं इस पर चढ़ गया।

'खूब मज़ा लिया तुमने भी....।' मैंने ठिठोली की।

'कहाँ सुशील भाई।....' झेंपते हुए उसने कहा 'कोई लड़का मिलता तो बहुत मज़ा आता।'

'मेरे बारे में क्या राय है।' मैंने मज़ाक आगे बढ़ाते हुए कहा।

वह पुनः झेंप गया, 'कैसी बात करते हैं सुशील भाई। कहाँ आप कहाँ हम?

'क्यों? मैं भी तो सामान्य सा ही व्यक्ति हूँ।' मैंने सहास्य कहा?

वह गंभीर होकर बोला, 'अरे हम तो आप के पैरों तले के धूल के बराबर भी नहीं हैं।' अब मेरे झेंपने की बारी थी। उसकी वात टालकर कहा, 'खैर छोड़ो.... फिर आगे बताओ?'

'आगे की कहानी बस यूँ ही है सुशील भाई! लडकी के शरीर में जव घर आया तो मेरा आचरण भिन्न था। लोगों को लड़की का व्यवहार अटपटा लगता। मैं रात में उठ कर तफरी करने घर के बाहर निकलता तो लोग मुझे पकड़ने की कोशिश करते... कभी कपड़े उतार कर नहाता तो लोग एतराज़ करते.... मेरे हर काम में नुक्ता चीनी करते... मैं क्रोधित हो जाता... झगड़ा होता। मैं सबको गिरा देता। ये सब मुझसे अपेक्षा करते कि मैं रसोई में खाना बनाऊँ.... क्या मैं खानसामा हूँ.... मैं तो अव्वल दर्जे का जिन्न हूँ

जिसके सामने बड़ी बड़ी शक्तियाँ खड़ी भी नहीं हो पातीं। मेरी शख्सियत से अनभिज्ञ ये लोग तांत्रिक ओझा को बुलाने लगे। बनारस, विध्याचल और जाने कहाँ-कहाँ ले गये। मैं कभी भूत बन जाता... कभी प्रेत बन जाता.... कभी चुड़ैल बन जाता.... सबको खूब नाच नचाता। कभी-कभी जब कोई तांत्रिक बल-प्रयोग करने की चेष्टा करता तो फिर मुझे उसे पटकनी देनी पड़ती.... मेरा खेल देखकर ये सब डर गये... निराश हो गये... फिर मैंने इन्हें लालच दिया। इनकी इच्छाओं की पूर्ति की। धीरे-धीरे समझौता हो गया। मुझे भी इनकी लड़की की मर्यादा का अहसास हो गया.... ये भी मुझे स्वीकार करने को तैयार हो गये।'

'तो अब क्या इरादा है?' मैंने उससे पूछा। 'जो आप का हुकुम सुशील भाई। जबान दे दी तो फिर मैं नहीं बदलूँगा मगर....।' कहकर वो चुप हो गया।

'मगर क्या?' मैंने पूछा

'बाबा मुझे बहुत मारेंगे....।' उसकी आँखें भयाकुल हो गयी थीं, मैंने बहुत बड़ा गुनाह किया है.... बाबा मुझे नहीं बख्शेंगे... मुझे कबूल नहीं करेंगे.... फिर मैं कहाँ जाऊँगा?' कहते कहते वह रुआँसा हो गया फिर आज़िज़ी से मुझसे बोला, 'आप बाबा से मेरी सिफ़ारिश कर दीजियेगा.... वो आपकी बात मान लेंगे।'

'ठीक है।' उसे निश्चिन्त करते हुये मैं बोला, 'मैं बाबा से कह दूँगा।' ठीक ही था। लड़की को छोड़ना था और जहाँ पर वह था वहाँ के मुखिया (बाबा) यदि उसे कबूल न करते तो बेचारा कहाँ जाता?'

मेरे आश्वासन से निश्चिन्त होकर उसने पूछा, 'कैसे जाऊँ? आप अपनी शक्ति से मुझे वहाँ भेजेंगे या....।' 'क्यों?' मैंने पूछा, 'क्या तुम स्वयं वहाँ नहीं जा सकते?'

'जा सकता हूँ। उसने हिचकिचाते हुये कहा, 'मगर रास्ते में मोहवश मैं

पलटा या बाबा के कबूल न करने पर यहाँ वापस आया तो मेरी बात खराब होगी और आप भी मुझे दोष देंगे।'

'तो फिर क्या किया जाय?' मैंने उसी से पूछा। उसने स्पष्ट कहा, 'या तो आप अपनी शक्ति से मुझे वहाँ भेज दें या फिर हमें लेकर वहाँ चलें। हमें बाबा कबूल कर लें तो फिर लड़की को लेकर वापस चले आइयेगा।'

मैंने कहा, 'बाद वाली बात ही ठीक है। तुमको बाबा कबूल कर लेंगे फिर मैं लड़की को लेकर वापस चला आऊँगा।'

वहाँ बैठे सारे लोग इन बातों को सुन रहे थे। सब सकते में थे। जो घट रहा था उस पर उन्हें विश्वास नहीं हो पा रहा था। जिन्न और आदमी का इतना सहज संवाद उनकी बुद्धि के परे था। सच है कभी-कभी सत्य कल्पनाओं से अधिक आश्चर्यजनक होता है।

जिन्न अन्तिम गुस्ल (नहाने) लेने चला गया। नहा कर जब सुषमा निकली तो सलवार कुर्ते में थी। बाल गीले थे और खुले थे। मेरे साथ स्कूटर पर पीछे बैठ गयी। ३-४ स्कूटर पर अन्य लोग साथ-साथ चले मगर वे इतने भयभीत थे कि मुझसे काफी दूरी बनाकर चल रहे थे। हमें लगभग ८ कि०मी. जाना था। अतः मै उससे बातें करते हुये चल रहा था। मैने लड़की के निजी जीवन के बारे में जिन्न से कई गोपनीय जानकारियाँ हासिल कीं। उसके शरीर के गुप्त चिन्हों के बारे में भी जिन्न ने मुझे बताया। यह भी बताया कि किन-किन लोगों ने उससे नाजायज़ संबंध बनाने की चेष्टा की थी। वे नहीं जानते थे कि जिन्न क्या बला है? रात में अकेली लड़की देखी.... लपक लिये... उसके बाद जिन्न ने उनके साथ क्या किया सुनकर हँसते-हँसते स्कूटर चलाना मुश्किल होने लगा। कम्पनी बाग की दरगाह पहुँचने के थोड़ी दूर पहले जिन्न ने जो बात मुझसे कही वह सदैव मेरे हृदय को आन्दोलित करती रहेगी। गुनाहों के बोझ तले अपराध बोध से ग्रस्त दर्द भरे स्वर में उसने पूछा था, 'सुशील भाई! क्या मैं बहुत नीच.... गिरी हुयी

भ्रष्ट शख्सियत हूँ?' उन शब्दो में छिपी वेदना ने मेरे मन प्राण को हिला दिया। उसे सांत्वना देते हुये बेसाख्ता मेरे मुख से निकला था। 'नहीं यार, तुम तो एक अच्छी शख्सियत के मालिक हो। जो कहते हो... वो करते हो.... किसी कामना के वशीभूत हो यदि कुछ गलत कर गये तो सुधरने को भी तैयार हो... समझाया गया.... मान गये आज का आदमी तो इतना गिर गया है कि एतबार के काबिल नहीं है... सोचता कुछ है..... कहता कुछ है...... करता कुछ है...... ज़माने की फिजा देखते हुये तुम एक आला शख्सियत के मालिक हो।'

मेरी बातों से उसके ऊपर का बोझ हट गया। सुकून मिला। उसने कहा, 'सुशील भाई! आपने मेरा कुछ कबूल नहीं किया.... फिर भी मेरी एक बात.... एक वादा आपसे है कि ज़िन्दगी में अगर कभी कोई काम पड़े आप मुझे किसी लायक समझे तो संकोच न करियेगा.... मगर मर्द वाला काम हो.... जान लेना हो.....। जान देना हो....।'

हम लोग दरगाह पर आ चुके थे। धूप, अगरबत्ती, फूल के साथ हम घुसे, लगभग ४ बजे शाम को दिसम्बर माह का मौसम था। एक २१-२२ वर्ष का खूबसूरत नौजवान वहाँ सिन्नी चढ़ा रहा था। उसे देख मेरा मन शंकित हुआ.... 'कहीं जिन्न इसी पर न चढ़ जाय?' मगर लड़की पर काबिज़ जिन्न ने जब इवादत शुरु की तो नौजवान वहाँ से भाग खड़ा हुआ। इवादत के बाद वही पेशकस.... जिन्न बार-बार मज़ार पर माथा रगड़कर माफी माँगता रहा मगर बाबा उसे कबूल करने को तैयार न थे। अन्ततः लड़की को बगलग़ीर कर मैंने निवेदन किया, 'तुम्हारा गुनहगार जिन्न है बाबा! लड़की को क्यों सजा दे रहे हो? जिन्न को कबूल कर लो.... उसे सुधरने का मौका दो।'

मेरे यह कहते ही लड़की का बदन थरथराने लगा। एक-डेढ़ मिनट तक वह यूँ थरथराता रहा जैसे जूड़ी बुखार की कंपकंपी हो..... फिर भक से जिन्न निकला और निढ़ाल होकर लड़की गिरने लगी। मैने उसे अपने आगोश

में संभाल लिया। सुषमा मूर्छित थी। उसके गालों को थपथपा कर किसी तरह उसे होश में लाया। होश में आते ही वह मुझे देखकर घबरा गयी। कम्पनी बाग का सन्नाटा, साँझ का धुंधलका.... ऐसे में किसी अनजान आदमी की गोद में स्वयं को देखकर किसी नौजवान लड़की की जो मनः स्थिति हो सकती है उसका अन्दाजा आप स्वयं लगा लीजिये। उसने घबराकर मुझसे अलग होने की कोशिश की मगर शरीर अशक्त था। अतः गिरने लगी। मैंने पुनः उसे संभाला मगर उसके शब्द..... छोड़ दीजिये मुझे... मत छुइये मुझे.....।

'ठीक हो जाओगी तो छोड़ दूंगा।' मैने मुस्कराते हुये कहा। उसकी भयभीत आँखें, असुरक्षा और अजनबियत के अहसास से सराबोर थीं..... आप कौन हैं.....?.... मैं यहाँ कैसे आयी....? इस जंगल में मैं आपके साथ कैसे हूँ?' वह प्रश्न करती जा रही थी और डर के मारे उसकी हालत खराब थी। उसके भय को निर्मूल करने के लिये मैंने उसे दूर खड़े भाइयों को दिखाया। भाइयों को देखकर उसकी जान में जान आयी। पुनः तेजी से उठकर भाइयों की तरफ़ बढ़ी मगर फिर लड़खड़ाई.... अब की उसने मेरे सहारे को स्वीकार किया और जोर से भाई को आवाज़ दी। मैं हॅंसने लगा। मैं जानता था भयवश यहाँ कोई नहीं आयेगा। वे लोग उसे अपने स्कूटर पर बैठाने को भी तैयार न थे। अतः मैंने ही उसे स्कूटर पर पीछे बैठाया।

रास्ते में मैंने उससे पूछा, 'सुषमा! क्या तुम मुझे नहीं पहचानती?'

'अब से पहले मैंने आपको कभी देखा नहीं फिर कैसे पहचानूँगी?' उसने हैरानी से मेरे प्रश्न पर प्रश्न किया।

फिर मैने उससे पूछा, 'क्या तुम भूत-प्रेत को मानती हो?'

उसने हँसकर उत्तर दिया, 'मैं आधुनिक युग की लड़की हूं.... इन सब ढकोसलों में विश्वास नहीं करती।'

ठीक ही तो कह रही है जब ये है तब जिन्न नहीं जब जिन्न था तब

ये नही थी। अब मुझे जिन्न की वतायी हुयी गोपनीय वातों की सत्यता परखनी थी। जैसे ही मैंने उसके शरीर के चिन्हों और गोपनीय बातों का जिक्र किया, वह लडकी भय और आशंका से कॉपने लगी.... 'आप हमारे बारे में इतनी बातें कैसे जानते हैं? ये बातें तो हमारे अतिरिक्त किसी और को ज्ञात भी नहीं है फिर....।'

अन्ततः मैंने उसे शान्त किया और घर तक पहुँचाने के साथ उससे वायदा किया कि इन बातों का जिक्र कभी किसी से नहीं करूँगा। प्यार से सहानुभूति से आश्वासन देकर उसके निर्बल मन को निश्चिन्त कर वापस आया। अब तो उसकी शादी हो चुकी है.... शायद वच्चे भी है।

■ ■ ■

लेखक : सुशील कुमार
जन्म : ७ नवम्बर १६५०
शिक्षा : एम० ए० (राजनीति शास्त्र)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

किशोरावस्था से ही जीवन के, प्रकृति के रहस्यों को समझने की उत्सुकता / अन्तःप्रज्ञा से भविष्य की घटनाओं का पूर्वाभास / पराजगत की शक्तियों से अप्रत्यक्ष / प्रत्यक्ष संपर्क / देवाधिदेव महादेव शिवशंकर की कृपा से साधना-पथ पर अग्रसर / तंत्र के माध्यम से उपजी-भक्ति द्वारा मोक्ष की आकांक्षा।

सम्पर्क : गंध मादन, १६३ ए, रसूलाबाद,
इलाहाबाद – २११००४
फोन : ५४६४१०
साधना केन्द्र : १२०/१, रसूलाबाद,
इलाहाबाद-२११००४